आ. कल्पयशसूरि

व्याकरण-विद्या-वारिधि-सिद्धान्त-भारती-दर्शन-चिन्तामणि—

कवि-शिरोमणि-ज्योतिर्विद्-दिनमणि—

स्व० श्रीमद्विजयधर्मधुरन्धर-सूरीश्वर-महाराज—

विरचितो ग्रन्थ-चतुष्टय-सन्चयः

१—पन्चपरमेष्ठि-गुणमाला (सौरभवृत्ति-गूर्जर भाषानुवाद-युता)

२—चतुर्विंशति-जिनस्तुतयः (अन्वय-वृत्तिभ्यां विलसिताः)

३—वर्णक्रम-सूक्ति-पन्चाशिका—(समश्लोक-गूर्जरानुवाद-मण्डिता)

४—श्रीगौतमस्वामि-चरित्रम्

(गूर्जरभाषात्मक-पद्यानुवाद-गद्यानुवादाभ्यां समर्थित च)

प्रधान—सम्पादकः

पं० श्रीधर्मध्वजविजयो गणी

सम्पादकः प्राक्कथनिका-लेखकश्च—

डॉ० रुद्रदेवत्रिपाठी, एम० ए०, आचार्यः,

पी-एच० डी०, डी० लिट्०

प्रकाशकः—

श्रीस्याद्वादामृत-प्रकाशन-मन्दिर-न्यासः (ट्रस्ट)

पालीताणा (गुजरात)

श्रीवीरनिर्वाण सं० २५२०] **[विक्रम सं० २०५०**

मूल्यम् : २५-०० रूप्यकाणि

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

W-6232
30-10-98
प. पू. आ. गुणरत्नसूरिजी म. सा. ना भेट

॥ ॐ अर्हं नमः ॥

श्रीस्याद्वाद-प्रकाशन सप्तम् पुष्प

शासन-सम्राट्-श्रीविजयनेमिसूरीश्वर-सद्गुरुभ्यो नमः ।

तपागच्छाधिपति-शासनसम्राट्-भट्टारकाचार्य-महाराज—
श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वर-पट्टालङ्कार-कविरत्न-शास्त्र विशारद—
आचार्य-श्रीविजयामृतसूरीश्वर-महाराज-विनेयरत्न—
विनय-निधान-मुनिवर्य-श्रीपुण्यविजयजिन्महाराज—
चरणकमल-मधुकर-काव्यकलानिधि-परमपूज्य—

श्रीमद् विजय धर्मधुरन्धरसूरीश्वर-महाराज-विरचितो
ग्रन्थ-चतुष्टय-सन्चयः

१—पन्चपरमेष्ठि-गुणमाला (सौरभवृत्ति-गूर्जरभाषानुवादयुता),

२—श्रीचतुर्विंशति-जिनस्तुतयः (अन्वय-वृत्तिभ्यां विलसिता),

३—वर्णक्रम-सूक्ति-पन्चाशिका (समश्लोकगूर्जरभाषानुवादमण्डिता)

४ — श्रीगौतमस्वामि-चरित्रम् (गूर्जरभाषात्मक-पद्यानुवाद-गद्यानुवादाभ्यां-समलङ्कृतम् च)

प्रधान-सम्पादकः —
पं० श्रीधर्मध्वजविजयो गणी

सम्पादकः प्राक्कथनिका लेखकश्च —
डॉ० रुद्रदेवत्रिपाठी, आचार्यः,
साहित्य-सांख्ययोग-दर्शनाचार्यः
एम० एम० (संस्कृत तथा हिन्दी) पी-एच० डी०, डी० लिट्०

प्रकाशकः —
श्रीस्याद्वादामृत-प्रकाशन-मन्दिर-न्यासः (ट्रस्ट)
पालीताणा (गुजरात)

श्रीवीरनिर्वाण सं० २५२०]   मूल्यम् २५-०० रु.   [विक्रम सं० २०५०

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S.   Jun Gun Aaradhak Trust

75928

प्रकाशक—
श्रीस्याद्वादामृत-प्रकाशन-मन्दिर (ट्रस्ट)
केसरियाजी नगर, तलाटी रोड,
पालीताणा-३६४२७० (गुजरात),

Serving JinShasan
075928
gyanmandir@kobatirth.org

सर्वेऽधिकाराः सुरक्षिताः

प्रथमं संस्करणम्
५५० पुस्तिकाः
वीरनिर्वाण संवत् २५२०
वि० सं० २०५०, सन् १९९४ ई०
मूल्य २५=०० रुपये

मुद्रकः —
स्याद्वाद मुद्रणालय
पालीताणा (गुजरात)

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

विषयानुक्रमणिका

१ – प्रकाशकीय निवेदन — प्रकाशक

२—श्रीमङ्गलाष्टकम् — पं० श्रीधर्मध्वजविजय गणी

३ – स्वागतम् — पं० श्रीशीलचन्द्रविजय गणी

४—आनन्दोर्मि अने संक्षिप्त निवेदन — प्रधान संपादकीय

५ –गुरुगुण-स्तुत्यष्टकम् — श्रीकपूरचन्द रवारैया, पालीताणा

६ –प्राक्कथनिका, [सम्पादकीय] — डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी

१—पंचपरमेष्ठि-गुणमाला — आचार्यवर्य-विरचिता

श्रीमद्विजयधर्मधुरन्धरसूरीश्वर- — पृ० १–४८
विरचित-संस्कृत-सौरभवृत्ति-
विभूषिता गूर्जरभाषानुवादसहिता च — पृ० १–१६

२—श्रीचतुर्विंशति-जिनस्तुतयः

श्लोकान्वय-वृत्तिभ्यां विराजिता। — पृ० १–३२

३—वर्णक्रम-सूक्ति-पन्चाशिका — पृ० १–१०

गुजराती समश्लोकी अनुवाद-मण्डिता — अनु० श्रीभानुभाई व्यास, 'बादरायण'

४—श्रीगौतम-स्वामि-चरित्रम् — पृ० १–१६

श्रीमद्विजयधर्मधुरन्धरसूरीश्वर-
विरचितगूर्जरभाषामयपद्यानुवाद-
गद्यानुवादाभ्यां समन्वितम्

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

प्रकाशकीय निवेदन

'पंच-परमेष्ठि-गुणमाला' आदि चार कृतिओनो एक उत्तम संचय प्रकट करतां अमे अति आनंदनो अनुभव करीए छीए.

परमपूज्य आचार्य **श्रीमद्विजय-धर्मधुरन्धरसूरीश्वरजी** महाराजे पोताना दीक्षा-पर्यायना गाळामां निरंतर तपःसाधना अने साहित्य-सर्जनामां बहुलक्षी साहित्यनुं सर्जन कर्युं हतुं। तेओ आडंबर-विहीन जीवन जीवता हता, पण क्रियामां सर्वोच्च लक्ष्यने पहोंचवा माटे जैनशासनने आवी आवी सुन्दर कृतिओ आपी गया छे, के जेमां अध्यात्म, योग, दर्शन, साहित्य, व्याकरण, क्रिया-काण्ड, धर्म, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, मन्त्रशास्त्र, स्तुति विगेरे सर्वसुलभ रीते काव्यरूपमां अथवा गद्यरूपमां संस्कृत, हिन्दी, प्राकृत अने गुजराती-भाषाओमां छटापूर्ण रचित छे.

आवा परमउपकारी गुरुदेव श्रीसूरीश्वरजी महाराजनी घणी रचनाओ पहेलां प्रकाशित थई चुकी छे, छतां हजु घणुं प्रकाशन बाकी छे।

श्रीसूरीश्वरजीनी भावना मुजब तेओश्रीना ग्रन्थोने प्रकाशित करवानुं मार्गदर्शन वर्तमान पूज्य आचार्य भगवंत अने तेमना शिष्यवृन्द-गणिवरो, मुनिवरो वडे अमने मळी रह्युं छे. तेमां पण पूज्य पंन्यास श्रीधर्मध्वजविजयजी गणी महाराज पोते खूब परिश्रम लई तेमनां अप्रकाशित साहित्यनुं सम्पादन, संशोधन विगेरे करी छपाववा माटे प्रेरणा आपी रह्या छे, ते अमारुं सद्भाग्य छे.

आ ग्रंथ-चतुष्टयनो संचय उज्जैन स्थित डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठीजी (एम.ए, पी-एच.डी डी लिट्.) आचार्य महाराजश्री प्रत्ये श्रद्धा धरावी, प्रस्तावनाथी संयुक्त करी पोतानां निर्देशनमां सुन्दर मुद्रण कराव्युं छे, तदर्थ 'स्याद्वादामृत-प्रकाशन-मंदिर-ट्रस्ट-पालीताणा' तरफथी तेमनो आभार मानीए छीए.

—**प्रकाशक**

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

प्राक्कथनिका

[सम्पादकीय]

वर्तमान युग में मानवीय जीवन की व्यस्तता अत्यधिक शिखर पर पहुंची हुई है। कोई भी धार्मिक व्यक्ति अच्छे महापुरुषों के वचनों को सुनकर, गुरुजनों के उपदेशों को अपनाकर, स्वयं निष्ठा-पूर्वक कुछ आत्मकल्याण की अभिरुचि रखते हुए भी सांसारिक क्रिया-कलापों में ऐसा उलझा रहता है कि—कुछ कर ही नहीं पाता। इस स्थिति को महामाया का प्रभाव बतलाकर धर्मशास्त्रों में इससे बचने के भी अनेक उपाय बताये गये हैं जिनमें सर्वोत्तम उपाय है—'स्वाध्याय'।

सभी धर्मों में स्वाध्याय को सर्वोपरि सिद्ध करते हुए आचार्यों ने उसके पथ का प्रकाशन किया है। स्वाध्याय शब्द उत्तम, शास्त्रसम्मत, धर्म-मार्ग-प्रवर्तक-प्रेरक साहित्य के अध्ययन के अर्थ को प्रकट करता है। स्वाध्यायशील मानव पथभ्रष्ट नहीं होता, उसके आचार-विचार, आहार-व्यवहार तथा आदान-प्रदान में अनियमितता, अधर्मता और असंगतता को अवकाश नहीं मिलता। ये सब गुण सहज ही स्वाध्याय से प्राप्त हो जाते हैं। इन्हीं के आधार पर उत्तरोत्तर उज्ज्वल जीवन बनता है और स्व-पर-कल्याण का मार्ग प्रशस्त बनता है।

आज शान्ति और सन्तोष के लिये मनुष्य इधर-उधर भटक रहा है। मृग-तृष्णा के कारण कहीं स्थिर समाधान उसे नहीं मिल रहा है किन्तु उसके पास जो अनन्त ज्ञान-भण्डार आयामों और आचार्यों की निर्मल वाणी में भरा है, उसे वह पहचान ही नहीं पा रहा है। पूर्वाचार्यों ने प्रायः उत्तमोत्तम साहित्य का निर्माण शास्त्रीय संस्कृत, प्राकृत, अर्धमागधी आदि भाषाओं में किया है। किन्तु उस भाषा का ज्ञान अब प्रायः सीमित हो गया है। इसीलिये परमोपकारी मुनिवर्य लोकभाषा में उसे अनूदित करके जन-जन तक पहुंचा रहे हैं।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

इस शताब्दी के समर्थ विद्वान् आचार्य, श्रीमद्विजयधर्मधुरन्धर सूरीश्वरजी महाराज ने भी ऐसी अनेक कृतियों का निर्माण किया, जिनका स्वाध्याय उभयलोक को सार्थक बनाने में पूर्ण समर्थ है। कवि-शिरोमणि पूज्यवर सूरीश्वरजी महाराज काव्यरचनाओं के साथ ही पूर्वाचार्यों द्वारा निर्मित, महत्त्वपूर्ण प्रौढ संस्कृत भाषा की कृतियों को व्याख्याओं द्वारा, सरल भाषानुवाद द्वारा समाज को परिचित कराने का भी सदा उपक्रम करते रहे।

इस सन्चय में 'पन्चपरमेष्ठि-गुणमाला' का प्रथम पाठ काव्यरचना की दृष्टि से बहुत ही उत्तम कृति है। शिखरिणी छन्द की स्तुति-साहित्य में जैसी मधुरता, पद-विन्यास, आलकारिक-विशिष्टता, सुमधुर गेयता प्रसिद्ध है, वैसी ही रचना-विदग्धता इस गुणमाला में सहज समाविष्ट है। गुणों की माला में गूंथे हुए पुष्पों की सुगन्धि से पाठक-स्तोता को आनन्दित करने के लिये 108 पद्यों पर सौरभ-वृत्ति लिखकर उसका गुजराती भाषा में अनुवाद भी आपने प्रस्तुत कर दिया है।

यह 'गुणमाला' स्वयं श्रीमद्विजयधर्मधुरन्धर सूरीश्वरजी ने ही निर्मित की है, ऐसा आभास भी हमें इसके अन्तिम पद्य की डेढ़ पंक्ति में—

'शुभध्याने मित्रा अमृत-पद-पुण्योद्धुर - धुरं-धरा धर्माध्वाना'

में आये अमृत, पुण्य और धुरन्धर पदों से होता है। किन्तु यह गुप्त नामांकन पद्धति कैसे आई ? यह निश्चित नहीं कहा जा सकता। वृत्ति में भी यह स्पष्ट नहीं किया गया है, अतः इसे पूर्वाचार्यकृत ही माना गया है।

द्वितीय रचना **'श्रीचतुर्विशतिजिनस्तुतयः'** है। यह रचना भी अत्यन्त प्रौढ है। **'शार्दूलविक्रीडित'** छन्द में इसका निर्माण हुआ है। २८ पद्यों में पूर्ण यह रचना व्याकरण-शास्त्र के क्लिष्ट-क्रिया-प्रयोगों से पूर्णतः सुसम्पन्न है। यङन्त और यङ्लुगन्त-प्रक्रिया के माध्यम से निर्मित क्रियापदों का इस स्तुति के प्रत्येक चरण में समावेश किया गया है। ये प्रयोग प्रायः सर्वसाधारण संस्कृतज्ञ के ज्ञान से भी परे हैं। इनका अर्थज्ञान तो दूर की बात है ही। अतः सूरीश्वरजी ने प्रत्येक क्रियापद की व्याख्या में उसका निर्माण-प्रकार व्याकरण की दृष्टि से अत्यन्त स्पष्ट कर दिया है। इसका गम्भीरता से अध्ययन करने पर प्राचानी विद्वानों की यह उक्ति नितान्त सत्य सिद्ध हो जाती है कि—**'टीका गुरूणां गुरुः'** टीका गुरुओं की गुरु है, जिसके द्वारा नवनिर्माण की प्रेरणा भी प्राप्त होती है। यह 'वृत्ति'

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

आचार्यश्री के व्याकरण-शास्त्रीय अगाध ज्ञान की गरिमा को सिद्ध करती है। स्थान-स्थान पर आपने व्याकरणशास्त्र की दृष्टि से रूप-सिद्धि और उसके सिद्ध-स्वरूप को सिद्ध बताने के लिये तर्क-वितर्क भी दिये हैं।

साहित्य-शास्त्र अनेक शाखाओं में विभक्त है। वह काव्य में कहाँ किस रूप में अभिव्यक्त हो रहा है, इस तथ्य को पहचानने से रचनाकार के सौष्ठव का परि-ज्ञान होता है, जो कि एक सहृदय विशेषज्ञ द्वारा पद-पद पर बहुत ही सूक्ष्मता के साथ आचार्यश्री ने समझाने का प्रयास किया है। व्याख्याकार रचनाकार के अन्तरंग से पाठक का साक्षात्कार तभी करा सकता है, जब उसकी रचना को विभिन्न माध्यमों से आलोडन-विलोडन करके उसकी अच्छाइयों को पुरस्कृत करे। उपर्युक्त दोनों वृत्तियों में यह प्रवृत्ति आचार्यश्री की बहुधा परिस्फुट हो रही है।

तृतीय रचना सुभाषित-पद्धति में स्वयं आचार्यजी ने निर्मित की है और उसकी एक अभिनव विशेषता यह भी है कि **अ** से **क्ष** तक के सभी वर्णों को आदि-स्थान देकर अनुष्टुप् छन्द में ५१ पद्य बनाये हैं। रचना प्रासादिक, उपदेश प्रद तथा मनोरम है। इसका गुजराती पद्यानुवाद श्रीभानुभाई व्यास ने और गद्यानुवाद आचार्यश्री ने किया है।

चतुर्थ कृति 'श्रीगौतमस्वामि-चरित्रम्' है। यह 'भुजंग-प्रयात' नामक छन्द के ३४ पद्यों में निर्मित है। वैसे इसके प्रत्येक पद्य का चौथा चरण-'नमो गौतम-स्वामिने मंगलाय' द्वारा पूरित है और पद्य के शेष ३-३ चरणों में प्रारम्भ से लेकर श्रीगौतमस्वामी चरित्र को क्रमशः गुम्फित किया है। इस प्रकार यह चरित्र-बोधक स्तोत्र है। इसकी रचना सरल, भावपूर्ण एवं प्रसादगुणयुक्त है। नित्य पाठ करनेवालों के लिये छन्द भी गायन-परिपाटी के अनुकूल लिया है। पूज्य आचार्यश्री ने इसकी रचना की है और साथ ही इसका गुजराती में पद्यात्मक तथा गद्यात्मक अनुवाद भी कर दिया है।

संस्कृत भाषा का असीम प्रवाह हमारे जैन-पूर्वाचार्यो ने समस्त जैन-वाङ्मय में बहाया है। उसी पूर्व-परम्परा को इन रचनाओं के द्वारा यथावत् आगे बढ़ाते हुए परम उपकारी गुरुवर श्रीविजयधर्मधुरन्धर सूरीश्वरजी ने अपने जीवन में एक-रसता प्रदान की, यह उनकी साहित्य-सम्पदा से प्रमाणित होता है।

श्रद्धेय पं. श्रीधर्मध्वजविजयजी गणिवर्य अपनी गुरुभक्ति का अभिनव आदर्श प्रस्तुत करते हुए उनकी बहुमूल्य किन्तु अब तक अप्रकाशित-कृतियों को प्रकाश में

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

लाने का निरन्तर प्रयास कर रहे हैं। उनके चिन्तन-मनन में हृदय से लगे हुए हैं और इतस्ततः विकीर्ण ग्रन्थसम्पदा को उपलब्ध करके परिश्रम-पूर्वक प्रेस-कॉपी तैयार कर छपाने की व्यवस्था में तत्पर हैं यह सभी के लिये अनुकरणीय और प्रशंसनीय है।

ईश्वर ऐसे सत्कार्यों में उनकी तथा समाज की निष्ठा को उत्तरोत्तर उत्कर्ष प्रदान करे, यही प्रार्थना है।

उज्जैन　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　—डॉ० रुद्रदेवत्रिपाठी

७-५-९४　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　सम्पादक

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S.　　　　Jun Gun Aaradhak Trust

महामंगलकारी, परमोपकारी, केसरियाजी नगर मण्डन

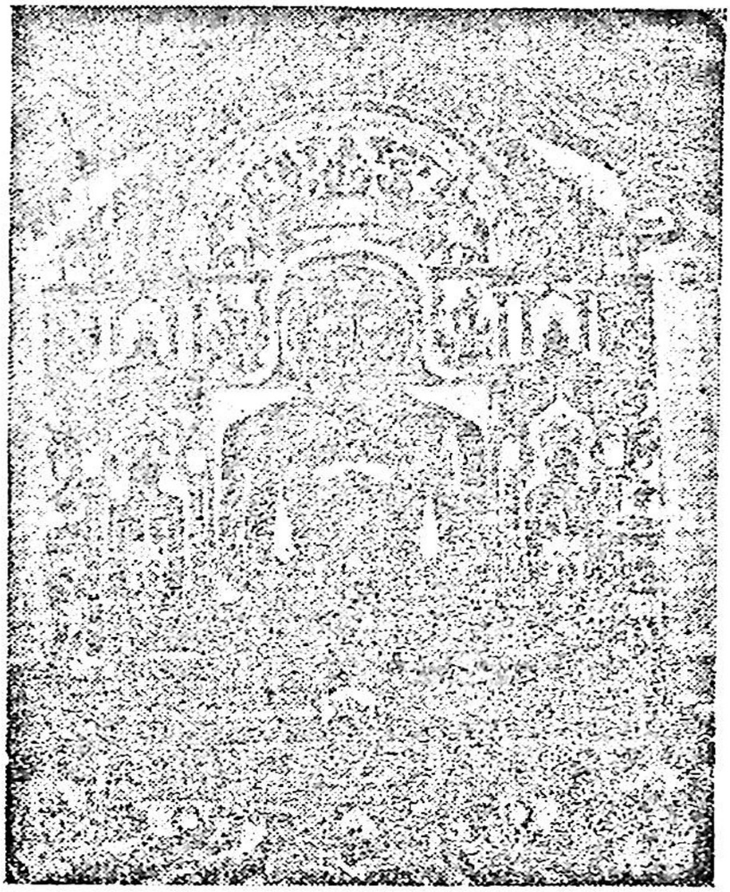

भगवान् श्री केसरिया जी

स्वस्तिश्रीणां सदागारा विमलामृतमूर्तयः ।
केशरार्चित-सर्वांगाः पान्तु श्रीकेसराभिधाः ॥

शासनसम्राट, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र, सूरिचक्र-चक्रवर्ती

प. पूज्य आ. श्रीविजयनेमिसूरीश्वरजी महाराज

शासने सर्वजीवानां कल्याण-करणे रताः ।
जयन्ति विजयि-श्रीमद्-नेमिसूरीश्वरेश्वराः ।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

।। श्रीमङ्गलाष्टकम् ।।

कर्ता— धर्मध्वजविजयो गणी

नाभेयादि-जिनोत्तमा जितभया विश्वे सदा पावनाः,
सौभाग्यावलिकारकाः सुखकरास्तीर्थङ्कराः शङ्कराः ।
विश्वानन्दकरास्तमोदिनकराः कन्दर्प-दर्पापहा,
रोगातङ्कहरा जनस्य सततं कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ।। १ ।।

सिद्धाः शान्तरसाः स्वभावविमलाः शान्तिं दधाना जने,
सिद्धानन्तचतुष्टया जनिजरा-मृत्यादिभिर्वर्जिताः ।
राजन्तः शमिनो मनोऽमलगृहे ध्यातानि कर्माणि यै—
र्ये ख्याता भुवनेऽखिले खलु तके कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ।। २ ।।

विख्याता भुवि पुण्डरीकगणिनः श्रीगौतमाद्यास्तथा,
सूरीशा गुणशालिनो जिनमते श्रीभद्रबाह्वादयः ।
अङ्गोपाङ्ग-विशारदा गुणयुताः श्रीपाठका निर्मला,
दान्ताक्षा मुनयोऽनघाः खलु समे कुर्वन्तु नो मंगलम् ।। ३ ।।

सम्मेतार्बुदरैवतामरगिरि – श्रीचित्रकूटाचलाः,
श्रीसिद्धाचलपावको गजपदस्तारंग-वैभारकौ ।
श्रीकैलासनगोत्तमो हिमगिरिश्चम्पा-प्रभासादयो,
विश्वे तीर्थमतल्लिकाः खलु समे कुर्वन्तु नो मंगलम् ।। ४ ।।

श्रीजम्बूमुनिवज्रसिंहगिरयः श्रीस्थूल – भद्रादयः,
सन्तः श्रेष्ठि-सुदर्शनादय इमे गंगोर्मिशीलान्विताः ।
श्रीसङ्घो गुणशेवधिः प्रवचनाधारो जिनैर्वर्जितो,
धर्मः सर्वदयामयः खलु समे कुर्वन्तु नो मंगलम् ।। ५ ।।

ब्राह्मी चन्दनबालिका च सुलसा सीता सुभद्राऽञ्जना,
सेना शीलवती शिवा द्रुपदजा कुन्ती कलावत्यपि ।
रेणा राजिमती तथा नलनृप - प्राणप्रिया देवकी,
सत्योऽन्या अपि शोभनाः खलु समाः कुर्वन्तु नो मंगलम् ।। ६ ।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

श्रीनाभिप्रमुखा जिनेन्द्रपितरः सिद्धार्थभूपस्तथा,
विख्याता जिनमातरो जगति याः सौभाग्यभाग्यप्रदाः ।
चक्रास्त्रा भरतेश्वराश्च भरतश्री – ब्रह्मदत्तादयः,
शिष्टा ये श्रुतपारगाः खलु समे कुर्वन्तु नो मंगलम् ।। ७ ।।

शौर्यस्वाः प्रतिविष्णु-विष्णुबलिनो मोक्षेच्छका ये तथा,
सङ्घे शान्तिकराः सदा गुणिरताश्चक्रेश्वरीमुख्यकाः ।
श्रीमातङ्ग-कपर्दिमुख्यविबुधाः सम्यग्दृशां विघ्नहाः,
सर्वे ते जिनशासनोन्नतिकराः कुर्वन्तु नो मंगलम् ।। ८ ।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

॥ नमो नमः श्रीगुरुनेमि-सूरये ॥

सु-स्वागतम्

'विद्वन्मूर्धन्य' और 'महामनीषी' जैसे विशेषण जिनके लिये समुचितरूप से प्रयुक्त किये जासकें, ऐसे परमपूज्य आचार्यप्रवर श्रीविजयधर्मधुरन्धरसूरीश्वरजी महाराज की कतिपय महत्त्वपूर्ण तथा प्रगल्भ रचनाओं का स्वागत करते हुए हृदय हर्षित होता है। उनकी रचनाएं बहुत अधिक हैं और उनमें भी प्रत्येक रचना में कुछ न कुछ ऐसा वैशिष्टय अथवा वैलक्षण्य है कि जिसके कारण उनकी रचनाओं का मुझे तो सतत तीव्र आकर्षण रहता है, और इसी लिये, उनकी रचनाएं जितनी बन सके उतनी ही शीघ्रता से प्रकाशित हों, ऐसा आग्रह, मैं, उनके शिष्यरत्नों से करता ही रहा हूं। और आनन्द की बात यह है कि पं० श्रीधर्मध्वजविजयजी गणीने, मुझ जैसे अन्यान्य अभिलाषियों के आशावाद को प्रोत्साहन मिले उस प्रकार उनकी रचनाओं के संग्रह धीरे-धीरे प्रकाशित करना प्रारम्भ किया है, यह एक अभिनन्दनीय बात है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में— पंचपरमेष्ठि-गुणमाला-सवृत्ति, चतुर्विंशतिजिनस्तुति-सटीक, वर्णक्रम-सूक्तिपंचाशिका-समश्लोक गूर्जरानुवादयुत तथा श्रीगौतमस्वामिचरित्र सविवरण-इस प्रकार चार लघु किन्तु प्रसादमधुर रचनाओं का संग्रह हुआ है।

जैन-दर्शन के प्राण 'पंचपरमेष्ठि-पद' हैं। अरिहंत, सिद्ध, सूरि, उपाध्याय तथा मुनि-इन पाँच परमेष्ठियों में जैनसम्मत देव-गुरु तत्त्व का समावेश होता है, और इससे 'इनकी आराधना ही धर्मतत्त्व है' ऐसा मानने में कोई औचित्यभंग नहीं माना जाता। ये पांच परमेष्ठी कोई व्यक्तिविशेष-परक पदार्थ नहीं हैं, किन्तु किसी भी आत्मा में विकसित होते हुए विशिष्ट गुण-धर्मो के आधार पर उसे उस-उस परमेष्ठी पद पर आरूढ आत्मा मानकर उसकी उपासना करनी होती है। इसमें अनानुपूर्वीक्रम से देखें तो २७ विशिष्ट गुणों को प्राप्त करे वह 'मुनि' पद प्राप्त कर सकता है, २५ विशिष्ट गुणों का विकास साधे वह 'उपाध्याय' बन सकता है, ३६ गुणों का धारक हो, तो वह 'आचार्य' पदारूढ हो सकता है, १२

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

लोकोत्तर गुणों के आत्मिक प्रकाश से प्रकाशमान बनानेवाला आत्मतत्त्व 'अरिहंत' माना जाता है, और अनन्त आत्मगुणों के घनीभूत स्वरूप जैसे आठ गुणों द्वारा विकसित होते हुए संसारातीत आत्मतत्त्व को 'सिद्ध-परमेष्ठी' के रूप में पहचाना जाता है। तथा इन पाँचों परमेष्ठियों के २७,२५,३६,१२,८—गुणों की जोड़ होगी १०८। यह १०८ का अंक अखण्ड अंक तो है ही, परन्तु और भी अन्य अनेक रूप से/दृष्टि से जैन अथवा अजैन दर्शनों में इस अंक का बहुत महत्त्व है। मूल बात यह है कि पाँच परमेष्ठियों के १०८ गुण हैं उनमें से एक-एक गुण पर एक-एक श्लोक बनाकर कुल १०८ श्लोकों की रचना 'पन्चपरमेष्ठी-गुणमाला' नाम की रचना है। इस रचना की टीका तो कर्त्ता ने बनाई ही है, साथ-ही-साथ बालजीवों की सुगमता के लिये उन्होंने स्वयं ही उन १०८ पद्यों का सरल अनुवाद भी गुजराती भाषा में दे दिया है।

दूसरी कृति २४ तीर्थंकरों की स्तवनारूप रचना है। केवल २८ पद्यों में निर्मित इस लघु रचना की विशेषता, इसके प्रत्येक पद्य में, और बहुधा तो प्रत्येक वाक्य में किये गये पौनःपुन्यदर्शक (यङ्लुबन्त और यङन्त) प्रयोगों में है। ऐसे प्रयोगों से काव्यरचना कुछ क्लिष्ट हो जाती है, इसका ज्ञान ऐसे पण्डितजनों को होता ही है, और इसी लिये उन्होंने ऐसे विशिष्ट प्रयोग होने पर भी ये पद्य क्लिष्ट न हों अथवा माधुर्य सर्वथा नहीं खो बैठें, इसका पूरा ध्यान रखा है। यह उनकी एक लाक्षणिकता है। यह 'जिन-स्तुति' सामान्य संस्कृतभाषा के ज्ञानवाले पाठक भी समझकर भक्ति का लाभ प्राप्त कर सकें, इसके लिये प्रत्येक पद्य का 'अन्वय' तथा विस्तृत 'वृत्ति' भी इसके साथ मुद्रित की गई है। 'हैमव्याकरण' के अनुसार प्रयोगों की रूपसिद्धि को भी वृत्ति में स्पष्ट किया है। २८ शिखरिणी छन्दों में यह कृति पूर्ण हुई है।

तीसरी रचना है—'वर्णक्रम-सूक्ति-पंचाशिका'। यह बहुत ही रसप्रद और विस्मयप्रेरक कृति है। मुझे व्यक्तिगत रूप से तो इसमें बहुत-ही आनन्द मिला है।

इस प्रकार की रचनाएँ कब से प्रारम्भ हुईं? इसका मैं अन्वेषण करने गया, तो इस प्रकार की रचना का प्रारम्भ छठी शती से तो निश्चित रूप से चालू हो गया था, ऐसे उदाहरणों की स्थिति ज्ञात हो

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

गई। इससे पूर्व भी यह प्रकार प्रयोग में आया हो, तो वह असम्भव नहीं है, ऐसा भी ज्ञात हुआ। यह तो संस्कृत की बात हुई। तदनन्तर उत्तरकाल में प्राकृत-अपभ्रंश, गूर्जर आदि भाषाप्रकारों में रचित साहित्य में ऐसी रचनाएँ विपुल प्रमाण में उपलब्ध हैं। और ऐसी विविध रचनाएं प्रकाशित भी हुई हैं। इस प्रकार की रचनाएँ मातृका क-कक 'अक्खरावट' आदि नामों से मध्यकालीन साहित्य में प्रसिद्ध हैं। ऐसी रचनाओं में बारहखड़ी के बावन अक्षरों को लेकर जो जो पद उन अक्षरों से आरम्भ होते हों, ऐसे उपदेशात्मक अथवा चरित्रात्मक दोहे, चौपाई आदि के निर्माण में जैन कवि भी बहुत निपुण थे। कभी 'क-का-कि-की-कु-कू-के-कै-को-कौ-कं-कः' इस प्रकार प्रत्येक अक्षर की बारहखड़ी के बारह-बारह दोहे वाली दीर्घरचनाएँ भी निर्मित होतीं।

इस पुरातन और मध्यकालीन रचना-परम्परा के साथ अर्वाचीन युग का अंक जोड़ सके वैसी अथवा इस परम्परा में अपने समय की प्रतिनिधि रचना के रूप में खड़ी रह सके, वैसी एक सशक्त संस्कृत रचना इस संग्रहग्रन्थ में आचार्यश्री की ओर से हमें प्राप्त हुई है, यह गौरवास्पद घटना है। और इसमें भी अधिक आनन्द की बात यह है कि गूजराती के प्रख्यात कवि श्री बादरायण ने इस रचना के पद्यों का समश्लोकी तथा कक्का के उसी क्रम का निर्वाह करने वाले सरस अनुवाद की रचना करके गूजराती पद्यात्मक साहित्य को एक सुन्दर सर्जन दिया है।

चौथी रचना में 'गौतम-चरित्र' है यह पूरा चरित्र बहुत सारपूर्ण ढंग से प्रस्तुत है। इसके पद्य और गद्यात्मक अनुवाद भी यहां हैं।

ऐसी उत्तम कृतियाँ देने के लिये इनके कर्ता आचार्य श्री को तो हम वन्दन करते ही हैं, साथ ही उनके शिष्यरत्न पंन्यास श्री धर्मध्वजविजयजी गणी को ये सभी रचनाएँ विद्वज्जगत् तक पहुंचाने के लिये पुनः पुनः अभिनन्दन भी देते हैं, और आचार्य श्री की शेष रही हुई समस्त कृतियों का शीघ्रतापूर्वक प्रकाशन करके अपना शिष्यधर्म सम्पादित करें, ऐसा साग्रह अनुरोध भी करते हैं।

जैन उपाश्रय
नया विकासगृह मार्ग
पालड़ी, अहमदाबाद—७

शीलचन्द्र विजय
दिनांक ७-५-९४

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

आनन्दोर्मि अने संक्षिप्त निवेदन

—प्रधानसम्पादकीय

शासनसम्राट्, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र, सूरिचक्र-चक्रवर्ती, परमपूज्य 'श्रीविजयनेमूरीश्वरजी महाराजनां पट्टाम्बर-अम्बर-मणि, शास्त्रविशारद, कविरत्न, पीयूषपाणि, पूज्य आचार्यप्रवर श्रीविजयअमृतसूरीश्वरजी महाराजनां विनयेरत्न, मुनिवर्य श्रीपुण्यविजयजी महाराजनां चरणपद्मसेवक, व्याकरण-विशारद, विद्या-वारिधि, सिद्धान्त-भारती, दर्शन-चिन्तामणि, कविशिरोमणि तथा ज्योतिर्विद् दिनमणि, परमपूज्य गुरुदेव स्व० श्रीमद् विजयधर्मधुरन्धरसूरीश्वरजी महाराजनी साहित्य-सम्पदा अतिमूल्यनां रत्नोवडे अलंकृत छे.

लगभग ७० रचनाओनी हारमाळा छपावीने प्रचार प्रसार पामी छे, पण हजु ४० जेटली पुस्तको अप्रकाशित छे. पूज्यश्रीनां स्वर्गप्रस्थान पछी ते पुस्तकोनुं प्रकाशन थाय ते तेमनां सर्वे शिष्यो, भक्तो अने प्रशसकोने अभीष्ट होवा छतां विशेष प्रगति थई शकी नथी, ए चिन्तानी वात छेज.

छतां **'अकरणान्मन्दकरणं वरम्'** ए लोक उक्तिने अनुसरी 'श्रीस्याद्वादामृत-प्रकाशन-मन्दिर, पालिताणाना ट्रस्टीओनी प्रेरणा अने पूज्य आचार्य, गणिवर्य तथा मुनिराजोना हार्दिक सहकारथी अमे कईंक करवा प्रयत्न करीए छीए. पहेलां सं. २०४० मां १—साहित्यशिक्षा-मंजरी, २—काव्य-विमर्श, ३—शब्द-वृत्तिमीमांसा अने,४—'शिशुहिता' व्याख्यासहित-अनुभव-सिद्ध-सारस्वत-स्तव-रूप चार पुस्तकोनुं सम्पुट तेमज १ —सूक्तिसुधा-स्रोतस्वती— (जिन-स्तुति-चतुर्विंशतिका-अवचूरिसहित),

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

२—श्रीकदम्बगिर्यष्टक अने, ३ —चतुर्विंशति-जिनस्तुति साथे त्रण रचनाओनुं बीजुं सम्पुट सं. २०४२ मां प्रकाशित थयां हतां। त्यार पछी छेक शिथिलता आवी गई पण अमारा उत्साहमां न्यूनता नहि आवा देतां आ वर्षे आ त्रीजुं प्रकाशन रजू थाय छे,

पूज्य गुरुदेवश्रीनो रचना-विश्व —

सामान्य मानवीने ज्यारे सरस्वतीनी कृपानो प्रसाद मळे छे, तो तेनां मनमां सार्वभौम प्रवृत्तिओ जागे छे, उमळकाभेर ते एकलो ते प्रसादनो आनन्द नहि लेतो बीजाने पण वेचवानी भावना करे ज छे. ज्यारे तेवो प्रसाद महामति, लोक-कल्याणना अभिलाषी अने परमसंयमी संतने मळे तो ते माटे शुं कहेवुं ?

आपणा गुरुदेवने सरस्वतीनो आ दिव्यप्रसाद नानी उंमरमां ज मळयो हतो। साधुजीवनमां आव्या पछी तेओ अत्यन्त उदारभावथी जिनशासननी सेवामां तत्पर बन्या हता। दैनिक साधुचर्यामांथी जेटलो समय तेमने मळयो तेमां तेओश्री कंई ने कंई लखताभणता ज रहेता. प्रतिक्षण पसार पामती तेमनी प्रतिभा कोई ने कोई सर्जन कर्या ज करती. तेना शुभ परिणामे तेओनां सर्जित-साहित्यनो संग्रह विविधलक्षी, विविध विषयवाळो तेमज विविधभाषामां सर्जायेलूं तेमनी हैयातीमां ज बहार पडयुं हतुं।

ज्यारे तेओ पोतानी जीवनलीलाने संकेरी निर्वाण पाम्या, त्ते वखते पण तेमनुं सर्जन ढगळाबंध छपाववा माटे शेष हतुं। हवे तेनां प्रकाशनमाटे अमे प्रयत्न करीए छीए।

आ प्रकाशनमां —

१—पंचपरमेष्ठि-गुणमाला (सौरभवृत्ति साथे), तेमज तेनो पूज्यश्रीवडे करायेल गूजराती अनुवाद, **२—श्रीचतुर्विंशति-जिनस्तुतयः,**

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

३ - वर्णकप-सूक्ति-पंचाशिका (श्रीभानुभाई व्यास, 'बादरायण' कृत समश्लोकी गूर्जर–भाषानुवादयुता तथा ४—श्रीगौतम-स्वामिचरित्र (गूर्जर–भाषात्मक–पद्यानुवाद-गद्यानुवादाभ्यां सनाथितम्-एम चा पुस्तकोनो सम्पुट प्रस्तुत थाय छे.

आ संपुटनां सम्पादन तथा प्रकाशनकार्यमां अमारा सुपरिचित विद्वा डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठीए पर्याप्त श्रम उठावीने पूज्यश्री प्रत्ये अने अमार संघ प्रत्ये जे सहकार कर्यो छे, तेनी अनुमोदना साथे आ प्रकाशन पूज्य गुरुदेवने अर्पण करुं छुं.

आनां मुद्रणमां अथवा अन्य प्रकाशनमां कोई त्रुटि रही गई होय, त ते माटे 'मिच्छामि दुक्कडं' लऊं छुं.

पालीताणा (गुजरात)
१३-५-९४
(वर्षीतपपारणादिवस)

पूज्यश्रीमद्विजयधर्मधुरन्धरसूरीश्वरचरणरेणु
धर्मध्वजविजय

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

।। श्री आदीश्वरभगवते नमः ।।

पर्वतराज हिमालयना उच्च शिखर पर
विराजमान परमाराध्यदेव, लोक गुरु,
श्री आदीश्वरभगवान् ने
महाराजा भरत चक्रवर्ती सपरिकर वन्दन करवा आवेल
ते वखत पूज्य श्रीनी साधना-मुद्रानुं

पुण्य-स्मरण करवा साथे
विनम्र भक्तिभावे तेमनां
पवित्र चरण-कमलोमां
'पञ्च-परमेष्ठी गुणमाला' आदि चार ग्रन्थोनो
आ सम्पुट
समर्पित करीए छीए।

गुरु पूर्णिमा
सीहोर (गुजराज)

श्री गुरुवर-चरणरेणु
धर्मध्वजविजय गणी

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

शास्त्रविशारद, कविरत्न, पीयूषपाणि

पू. पूज्य आ. श्रीविजय अमृतसूरीश्वरजी महाराज

पीयूषपाणयः पूज्या विज्ञाः शास्त्रविशारदाः ।
विजयामृतसूरीशा जयन्ति कविहीरकाः ॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

सिद्धान्त-भारती, दर्शनचिन्तामणि, कविशिरोमणि,

प. पूज्य आ. श्रीविजयधर्मधुरन्धरसूरीश्वरजी महाराज

विद्या-विद्योतित-स्वान्ता निर्मल-ज्ञान-सागराः ।
विजयन्ते सूरिवराः पूज्या धर्म-धुरन्धरा ॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

(१)

पंचपरमेष्ठि-गुणमाला
सौरभ-वृत्ति-विभूषिता
श्रीमद्विजयधर्मधुरन्धरसूरीश्वर–
विरचित-गूर्जरभाषानुवाद-सहिता च

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥

"पञ्चपरमेष्ठिगुणमाला"

१-अर्हद्गुणमाला

अयं रक्तः कामं तदपि गतरागाननुगतः,
प्रमाणेनोच्चैः श्रीजिनवरतनोर्द्वादशगुणः ।
सदा गीतं गायन् दलचलनदम्यानुसरणा—
दशोको लोकानामपहरति शोकं तरुवरः ॥ १ ॥

सौरभ-टीकाया मङ्गलम्

ॐ ह्रीं अर्हं वरं मन्त्रं प्रणिधाय परं महः ।
परमेष्ठि-गुणग्रामं ससौरभमभिष्टुमः ॥

सौरभः— कामम्-पर्याप्तम् । रक्तः-अरुणः । लोहित इति यावत् । यद्यपीति शेषः । तदपि-तथापि । गतरागान्-वीतरागान्, अर्हत इति यावत् । अनुगतः-अनुवर्तमानः । प्रमाणेन-परिमाणेन । श्रीजिनवरतनोः-श्रीमदर्हद्वपुषः । द्वादशगुणः-द्वादशगुणाधिकः । उच्चैः-उन्नतः । दलचलन-दम्यानुसरणात्-पत्रान्दोलनच्छलाश्रयणात् । सदा-सर्वदा । गीतम्-गानम् । "गीतं शब्दितगानयोः" इत्यनेकार्थः । गायन्-आलपन् । अयम्-पुरोवर्ती । अशोकः-कङ्केलिः, वञ्जुल इति यावत् । "अशोको कङ्केलि-वञ्जुलौ" इत्यनेकार्थः । तरुवरः-वृक्षश्रेष्ठः । लोकानाम्-जनानाम् भुवनानां वा । "लोकस्तु भुवने जने" इत्यमरः । शोकम्-खेदम्, पुत्रवियोगमरणादि-जनित-वैक्लव्याख्य-चित्तवृत्ति-विशेषमिति यावत् । तथोक्तं **रसगङ्गाधरे**-"पुत्र-वियोग-मरणादि-जन्य-वैक्लव्याख्यश्चित्तवृत्ति-विशेषः शोकः" इति । "शोकः शुक् शोचनं खेदः २।२१३॥ **इत्यभिधानचिन्तामणिः** । अपहरति-निवारयति, विनाशयतीति यावत् ।

अत्र—रक्तस्य विगत-लौहित्यानुगमनं विरोधः, विरहितरागद्वेषानुगमनार्थत्वेन समाधानमिति विरोधस्याभासीकरणात् "आभासत्वे विरोधस्य विरोधाभास इष्यते" इति चन्द्रालोकीयलक्षणलक्षितो विरोधाभासो नामालङ्कारः । स्वनोऽयं न

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

दलचलनजनितः किन्तु गानप्रयोज्य इति "कैतवापह्नुतिर्व्यक्तौ व्याजाद्यैर्निह्न
पदैः" इति चन्द्रालोकलक्षितलक्षणः कैतवापह्नुतिरलङ्कारश्च ।। १ ।।

सरोजाद्यां जानूच्छ्रितमधुपवाद्यां सुमनसा—
मधोवृन्तां वृष्टिं विदधतितरां यत्सुमनसः ।
चतुष्क्रोशावन्यां समवसरणे तज्ज्ञपयते,
सुमेष्वस्त्रत्यागं निकृतिजनितं सार्वपुरतः ।। २ ।।

सौरभः— सुमनसः-सुष्ठु शोभनं मनोऽन्तःकरणं येषान्ते तथा देवाः । "सुमन
प्राज्ञ-देवयोः । जात्यां पुष्पे" **इत्यनेकार्थः** । चतुष्क्रोशावन्याम्-योजनमितभूमि
समवसरणे-देवविरचित-तीर्थकृद्देशनासभायाम् । यत् । सुमनसाम्-कुसुमाना
सरोजाद्याम्-सरोजं कमलमाद्यं यस्यां सा सरोजाद्या तान्तथा । कमल-बहुलामि
यावत् । जानूच्छ्रितमधुपवाद्याम्-जानूच्छ्रिताः-जानुप्रमाणोन्नता चासौ मधुपा भ्रम
वाद्यं यस्यां सा मधुपवाद्या च जानूच्छ्रितमधुपवाद्या तूर्य्यतुल्य-भ्रमरझङ्का
करम्बिता तान्तथा । अधोवृन्ताम् । अधोऽधोमुखं वृन्तं पुष्पबन्धनं यस्यां साऽध
वृन्ता तां तथा । "वृन्तं प्रसवबन्धनम्"— ४।१९३।। **इत्यभिधान-चिन्तामणि**
"बन्धनं पुष्पफलयोर्वृन्तमाहुः" इति कात्यश्च । वृष्टिम्-वर्षणम् ।" वृष्टिर्वर्ष
इत्यमरः । विदधतितराम्-सातिशयमाचरन्ति । तत् सार्वपुरतः-अर्हदग्रे । निकृ
जनितम्-तिरस्कारप्रयोज्यम् । सुमेष्वस्त्रत्यागम्-सुमेषुणा पुष्पबाणेन कामेन-अ
त्यागः-पुष्पात्मनिजास्त्रपरित्यागः सुमेष्वस्त्रत्यागस्तं तथा । ज्ञपयते-विज्ञापयति, सूच
तीति यावत् ।। २ ।।

सुधायाः सौहार्दं मधुमधुरताया मधुरिमा,
स्वराणां स्वारस्यं निखिल-निनदानां निनदता ।
श्रुतीनां सद्भूतिर्व्यथनमथनं सम्मदमदो,
ध्वनिर्दिव्यो भव्यो जयति जिनराजास्य-जनितः ।। ३ ।।

सौरभः— जिनराजास्यजनितः-जिनेश्वर-वदनकमलप्रादुर्भूतः । सुधायाः-पी
षस्य । सौहार्दम्-मित्रतारूपः । सादृश्यं लक्ष्यते । मधुमधुरतायाः-माक्षिकमाधुर्य्यस्
मधुरिमा-मधुरिमरूपः । स्वराणाम्-निषादादित्वेन प्रसिद्धानाम् । स्वारस्यम्-स्व
सता, सामञ्जस्यमिति यावत् । निखिल-निनदानाम्-समस्तध्वनीनाम् । निनद
ध्वनित्वरूपः । श्रुतीनाम्-श्रवणानाम् । सद्भूतिः-सती समीचीना चासौ भूतिर्वि
तिस्तथा, विभूतिसर्वस्वमिति यावत् । व्यथनमथनम्-दुःखसमुन्मूलनरूपः सम्मदम
हर्षप्रकर्षाभिमानरूपः । "मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षः प्रमोदामोदसम्मदाः" इत्यमर

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S.   Jun Gun Aaradhak Trust

भव्यः-शोभनः । दिव्यः-अलौकिकः । ध्वनिः । जयति-विजयते । सर्वोत्कर्षेण-वर्तते इति भावः । रूपकालङ्कारः ॥ ३ ॥

शयाब्जेऽस्वप्नानां प्रमदभरलास्यं विदधती,
जिनास्याब्जं प्रेक्ष्योदित-मुदितहास्याङ्कुरवती ।
चकोरद्वन्द्वं वाऽतुलधवलिमापूरितगतिः,
सुखं केषामेषा जनयति न वा चामरततिः ॥ ४ ॥

सौरभः— अस्वप्नानाम्-न स्वपन्ति निद्रातीतयस्वप्ना देवास्तेषां तथा । "देवाः सुपर्व.... गीर्वाणा "मरुतोऽस्वप्ना विबुधा दानवारयः" ।२।३।। **इत्यभिधान-चिन्तामणिः** । शयाब्जे-करकमले, "शयः शमः हस्तः पाणिः करः" ३।२५५।। **इत्य-भिधानचिन्तामणिः** ।। प्रमदभरलास्यम्-हर्षोद्रेकप्रवृत्तनृत्यम् । विदधती-कुर्वती । जिनास्याब्जम्-जिनेश्वरवदनकमलम् । प्रेक्ष्य-समवलोक्य । उदितमुदितहास्याङ्कुर-वती-समुत्पन्नहर्षप्रयोज्यहासाङ्कुरशालिनी । चकोरद्वन्द्वम्-चकोरमिथुनम् । वा-इव । "वा समुच्चय एवार्थ उपमान-विकल्पयोः" इति **मेदिनी** । अतुलधवलिमा-अतुलोऽनुपमो धवलिमा शुक्लता यस्याः सा तथा ॥ आपूरितगतिः-अनवरुद्धप्रसरा । एषा-प्रत्यक्षदृश्या । चामरततिः-बालव्यजनावलिः । "चामरं बालव्यजनं रोमगुच्छः प्रकीर्णकम्" ३।३८१।। **इत्यभिधानचिन्तामणिः** । केषाम्-जनानामिति शेषः । सुखम्-आनन्दम् । न वा-नहि । जनयति-उत्पादयति ? । अपि तु सर्वेषामेवानन्दं जनयत्येवेति भावः । उपमालङ्कारः ।। ४ ।।

महामोहद्रोहाद्यरि-करिविनाशाय रचितं,
सुवर्णं स्वर्णाङ्गं वरघृणिमणीपूर्ण-खचितम् ।
क्रमान्दोलत्पीठं सुकृतजननं दिव्यनयनं,
जिनानामास्थानं विलसति मृगेन्द्रासनमहो ॥ ५ ॥

सौरभः— महामोहद्रोहाद्यरिकरिविनाशाय-महामोहद्रोहादयो येऽरयः शत्रवस्त एव करिणो मतङ्गजास्तेषां विनाशो विध्वंसो-महामोहद्रोहाद्यरिकरिविनाशस्तस्मै तथा । रचितम्-निर्मितम् । सुवर्णम्-सुष्ठु शोभनो वर्णो रूपं यस्य तत्तथा । स्वर्णाङ्गम्-काञ्चनमयावयवम् । वरघृणिमणीपूर्णखचितम्-वरा श्रेष्ठा घृणिः किरणो यासां ता वरघृणयस्ताश्च ता मणयो रत्नानि वरघृणिमणयस्ताभिः पूर्णं यथा स्यात्तथा खचितं-व्याप्तं तथा । मणिशब्दवन्मणीशब्दोऽपि प्रयुज्यतेऽभियुक्तैस्तथा हि —

बोधागाधं सुपदपदवी-नीरपूराभिरामं,
जीवाऽहिंसाऽविरतलहरीसङ्गमागाहदेहम् ।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

चूलावेगं गुरुगममणी - सङ्कुलं दूरपारं,
सारं वीरागमजलनिधिं सादरं साधु सेवे ।।इति ।।

क्रमान्दोलत्पीठम्-क्रमाभ्यां चरणाभ्यामान्दोलन्तः परिचलन्तः पीठाः फलका यत्र तत्तथा ।" चरणः क्रमणः पादः पदोंऽह्रिश्चलनः क्रमः" ।३।२८०।।इत्यभिधान-चिन्तामणिः । सुकृत-जननम्-पुण्योत्पादकम् । दिव्यनमनम्-दिव्यानां दिविभवानां नमनं प्रणिपातो यत्र तत्तथा ।। ५ ।।

सहस्रादित्यानां समुदितविभातोऽप्यतिशया,
प्रभा ते वर्य्यार्हन् ! विलसतितरां निर्मलतरा ।
न लोका लोकन्तेऽमहसमथवाऽत्यन्त - महसं,
विभात्येतन्मत्वा सुररचित - भामण्डलमिदम् ।। ६ ।।

सौरभः— वर्य्यार्हन् ? सर्वलोकातिशय-प्रशस्य जिनेश्वर ! सहस्रादित्या-नाम्-दशशतसंख्यकदिवाकराणाम् । समुदितविभातः । एकत्रीभूतप्रभातः । अपि-खलु । अतिशया अधिका । निर्मलतरा-अतिनिर्मला । ते-श्रीमतो भवतः । प्रभा-कान्तिः । विलसतितराम्-संशोभते । लोकाः-जनाः । अमहसम्-नास्ति महस्तेजो यस्मिस्तं तथा । अथवा । अत्यन्तमहसम्-सुमहत्प्रतापम् । 'महस्तूत्सव-तेजसोः' इति **मेदिनी** । पदार्थं जनं-वेति शेषः । न-नहि । लोकन्ते-द्रष्टुं न शक्नुवन्तीति भावः । एतत्-इदम् । मत्वा-अवधार्य्य । इदम्-प्रत्यक्षदृश्यम् । सुररचित-भामण्ड-लम् - देवविनिर्मितप्रभामण्डलम् । विभाति-दीप्यते । समधिकतेजसं श्रीमन्तं भवन्तं द्रष्टुमशक्नुवतामनुग्रहाय-देवै रचितं भामण्डलमिदं शोभते इति सारांशः ।। ६ ।।

अनादेरज्ञानान्निखिलजनता - निद्रिततमा,
तमस्तस्या हर्तुं रविरुदयति श्रीजिनवरः ।
तदायानं ज्ञप्त्यै श्रवणमधुरः पूरितनभाः,
पुरस्तादुच्चैस्तात् प्रसरणपरो दुन्दुभिरवः ।। ७ ।।

सौरभः— अनादिकालप्रवाह-रतितात् । अज्ञानात्-अविद्यातः । निद्रित-तमा-अत्यन्तं निद्रिता । तस्याः-जनतायाः । तमः-अज्ञानम् । हर्तुम्-विनाशयितुम् । श्रीजिनवरः-श्रीमदर्हन् । रविः- सूर्यः । उदयति-प्रकाशते । तदायानं ज्ञप्त्यै-श्रीजिने-श्वर-दिनकराऽऽगमन-निवेदनाय । श्रवणमधुरः-कर्णसुखकरः । पुरस्तात्-अग्रतः । उच्चैस्तात्-उपरि । प्रसरणपरः-प्रसरणशीलः । पूरितनभाः - परिपूरिताकाशः । दुन्दुभिरवः-दुन्दुभिध्वानः । प्रादुर्भवतीति शेषः ।। ७ ।।

त्रिलोक्याः साम्राज्यं यदधिगतवान् धर्मवरत—
श्चतुष्प्रान्तश्चक्री सुरनरवराभ्यर्चितपदः ।
ततस्तत्पुण्यर्द्धेरतिशय — भरेणोच्छ्रिततमं,
वदातं तच्छत्रत्रय भवतु सन्मौक्तिकमदः ॥ ८ ॥

सौरभः— सुरनरवराभ्यर्चितपदः-देवाधीश-नराधीशोभयसम्पूजितचरणः । धर्मवरतश्चतुष्प्रान्तः-धर्मवरचतुरन्तः । "धम्मवरचाउरन्त" **इत्यागमोक्तेः** । चक्री-चक्रवर्ती । धर्मचक्रवर्तीति यावत् । यत्-यस्मात् । त्रिलोक्याः-भुवनत्रयस्य । साम्राज्यम्-आधिपत्यम् । अधिगतवान्-प्राप्तवान् । ततः-तस्माद्धेतोः । तत्पुण्यर्द्धेः-तदीयधर्मसमृद्धेः । अतिशयभरेण-अतिशयमाधिक्येन । उच्छ्रिततमम्-अत्यन्तमुन्नतम् । सन्मौक्तिकम्-जात्यमुक्तासमुदय-विलसितम् । वदातम्-अवदातम्, विशदमिति यावत् । "वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः" **इतिभागुरिमतेन** "वदातम्-इति रूपं द्रष्टव्यम् । अदः-विप्रकृष्टत्वेन प्रत्यक्षदृश्यम् । तच्छत्रत्रयम्-तदीयातपत्रत्रितयम् । अवतु-रक्षतु । भुवनत्रयमिति शेषः ।

पदार्थाः षड् लोके गुणनिकरपर्य्यायनिचया—
वनन्तौ, तज्ज्ञानं मतिमुखचतुष्कान्न भवति ।
समस्तं तज्ज्ञातुं चरमममलं केवलमलं,
जिनेन्द्रे तन्नित्यं समतिशयितं ज्ञानमुदितम् ॥ ९ ॥

सौरभः— लोके-जगति । पदार्थाः-वस्तूनि । षट्-षट्त्वसङ्ख्याकलिताः । गुणनिकरपर्य्यायनिचयौ-गुणपर्य्यायसमुदयौ । अनन्तौ-अन्तविरहितौ, अपरिच्छिन्नमिति यावत् । मतिमुखचतुष्कात्-मतिप्रभृतिज्ञानचतुष्टयात् । तज्ज्ञानम्-पदार्थ-गुण-निकर-पर्य्याय-निचयाववोधः । न-नहि । भवति-जायते । समस्तम्-सम्पूर्णम् । तत् पदार्थादि । ज्ञातुम्-वेदितुम् । चरमम्-अन्तिमम् । 'अमलम्-विशुद्धम् । केवलम्-केवलज्ञानम् । अलम्-पर्य्याप्तम् । समतिशयितम्-समतिशयम् । नित्यम्-शाश्वतम् । तत्-केवलात्मकम् । ज्ञानम्-जिनेन्द्रे-जिनेश्वरे । उदितम्-उत्पन्नम् ।

वचांसि श्रेयांसि प्रहत - चरितान्यत्र भुवने,
परेषां नो केषां रुज इव तनूर्घ्नन्तिनिभृतम् ।
वचांसि श्रेयांसि प्रशमरस - पूर्णानि भविनां,
समेषामर्हस्ते विदधति यथान्नं जलधराः ॥१०॥

सौरभः— अत्र-अस्मिन् । भुवने- लोके । परेषाम्-अन्यदर्शनिनाम् । प्रहत-

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

चरितानि-प्रहतं विनाशितं चरितं चारित्रं येभ्यस्तानि-तथा। वचांसि-उपदेश-वचनानि। रुजः-व्याधयः। तनूः-शरीराणि। इव-यथा। निभृतम्-एकान्ततः। येषाम्-जनानाम्। श्रेयांसि-कल्याणानि, सुकृतानि वा। घ्नन्ति-नाशयन्ति। "अथ संस्कृते। व्युत्पन्न प्रहत क्षुण्णाः "३१९॥ इत्यभिधानात् प्रहतशब्दस्य संस्कृतशब्दपर्य्यायत्वानुसन्धाने तु" प्रहतचरितानीति श्रेयो विशेषणपरत्वेनोन्नेयम्। अर्हन्? जिनेश्वर! प्रशमरस-पूर्णानि परिपूर्ण-शान्तरस-प्रत्यायनपराणि, ते-श्रीमतो-भवतः। वचांसि-देशना-वचनानि। जलधरा-मेघाः। अन्नम्-सस्यम्। यथा-इव। समेषाम्-सर्वेषाम्। भविनाम्-भव्यात्मनाम्-भव्यात्मनाम्। श्रेयांसि-क्षेमाणि मोक्षान् वा। विदधति-कुर्वन्ति। उपमालङ्कारः॥ १०॥

श्रुतं नो नो दृष्टं सुरपतिभिरर्चा विरचिता,
यथा तेऽर्हंस्तादृक् त्रिजगति परस्य क्षणमिति।
अहो सौभाग्यं ते महनमपि वैराग्यजननं,
महत्त्वं विस्तारं व्रजति भवतोऽर्चातिशयतः॥११॥

सौरभः— अर्हन्! जिनेश्वर! सुरपतिभिः-इन्द्रैः। यथा-येन प्रकारेण। ते-श्रीमतो भवतः। अर्चा-पूजा। विरचिता-विहिता। तादृक्-तथा। त्रिजगति-भुवनत्रये। परस्य-भवदतिरिक्तस्यान्यदर्शनिनः। क्षणम्-तदात्म-सूक्ष्मकालमभिव्याप्यमपि। (विरचिता) इति-इत्थम्। नो-नहि। श्रुतम्-आकर्णितम्, श्रावणप्रत्यक्षविषयतामापादितमिति यावत्। नो-नहि। दृष्टम्-अवलोकितम्। चाक्षुषप्रत्यक्षविषयतां नीतमिति यावत्। ते-भवतः। सौभाग्यम्-सुष्ठु-शोभनो भगो ज्ञानादिसम्पत्तिर्यस्य स सुभग-भगस्तस्य भावस्तथा। अहो-आश्चर्यकारकम्। ते-श्रीमतो भवतः। महनम्-पूजनम्। अपि खलु वैराग्यजननम्-विरागभावोत्पादकम्। भवतः-श्रीमतस्तव। अर्चातिशयतः-समधिकसपर्य्यातः। महत्त्वम्-माहात्म्यम्। भव्यानामिति शेषः। विस्तारं-वृद्धिम्, प्रसारमिति यावत्। व्रजति-गच्छति॥ ११॥

अपायानामाप्तिर्भवति .. भवकाराऽशुभगृहे,
जराधिव्याधीनां मरणचरमाणामनुपलम्।
भवाँस्तस्यामूलं दुरितनिकरं यत्कषितवाँ—
स्ततोऽपायान्मुक्तोऽतिशयकलितो रक्षतु भवात्॥१२॥

सौरभः— भवकाराऽशुभगृहे-भवः-संसार एव कारात्मकमशुभममङ्गलं गृहं सदनं-भवकाराऽशुभगृहन्तस्मिंस्तथा। अनुपलम्-प्रतिक्षणम्। मरणचरमाणाम्-मरणं मृत्युश्चरममन्तिमं येषान्तेषान्तथा, मरणसहितानामित्यर्थः। जराधिव्याधीनाम्—

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

जीर्यतेऽङ्गमनयेति जरा-विस्रसा च-आधिमानसी व्यथा च व्याधिः शरीररुजा च। जराधिव्याधयस्तेषान्तथा। अथ विस्रसा जरा" ३।४॥ इत्यभिधानचिन्तामणिः। "पुंस्याधिर्मानसी व्यथा" इत्यमरः। अपायानाम्-विनाशानाम्। आप्तिः-प्राप्तिः। भवति-जायते। भवान्-श्रीमाँस्त्वम्। यत्-यस्माद्धेतोः। तस्याः-तादृशायप्राप्तेः। मूलम्-निदानम्। दुरितनिकरम्-पापकदम्बकम्। कषितवान्-समुन्मूलितवान्। ततः-तस्मात्। अपायात् विनाशात्। मुक्तः-विरहितः अतिशयकलितः-अतिशयान्वितः। सन्। भवात्-संसारात्। रक्षतु-त्रायताम्। भविकर्मन्निति॥ १२॥

२-अथ सिद्धगुणमाला

निगोदेऽनन्तांशं प्रकटमभवज्ज्ञानमसमं,
ततो व्यक्ताव्यक्तं क्रमश उदितं यद् व्यवहृतौ।
परं पूर्णं नासीद् भवसदसि कस्यापि किमपि,
प्रसिद्धं सिद्धानां तदतुलमनन्तं विलसति॥१३॥

सौरभः— यत्-बुद्धिविषयीभूतम् ज्ञानम्। निगोदे-अनाद्यव्यवहारे। अनन्तांशम्-अतिसूक्ष्मम्। असमम्-निकृष्टत्वेनानुपमम्। प्रकटम्-व्यक्तम्। अभवत्-समजायत। ततः-तदनन्तरम्। क्रमशः-क्रमात्। व्यवहृतौ-व्यवहारे। व्यक्ताव्यक्तम्-स्फुटास्फुटम्। उदितम्-उत्पन्नम्। परम्-किन्तु। भवसदसि-संसारभवने। पूर्णम्-सर्वाङ्गपरिपूर्णम्। ज्ञानमिति शेषः। कस्यापि-किमपि-कथमपि। न-नहि। आसीत्-अभवत्। तत्-ज्ञानम्। अतुलम्-उत्तमत्वेनानुपमम्। अनन्तम्-पूर्णम्। सिद्धानाम्-सिद्धात्मनाम्। प्रसिद्धम्। विलसति-विशेषेण शोभते॥ १३॥

विना सामान्यं नो प्रभवति विशेषोऽत्र कृतिनां,
विशेषात् सामान्यं भवति ननु सिद्धात्मसु परम्।
त्रिलोक्यास्त्रैकाल्यं पतति प्रतिबिम्बं हि नितरा—
मखण्डे कैवल्ये विमलमुकुरे दर्शनगुणे॥१४॥

सौरभः— अत्र-लोके। कृतिनाम्-विदुषाम्। "विद्वान् कृती कविर्विचक्षणः ३।५॥ इत्यभिधानचिन्तामणिः। सामान्यम्-सामान्यज्ञानम्, निर्विकल्पकज्ञानमिति यावत्, दर्शनोपयोगमिति तु हृदयम्। विना-अन्तरेण। विशेषः-विशेषज्ञानम्, सविकल्पकमिति यावत्। ज्ञानोपयोगमिति हृदयम्। नो-नहि। प्रभवति-प्रकर्षेण जायते। परम्-किन्तु। सिद्धात्मसु-सिद्धाः सिद्धभावमिता आत्मानो जीवाः सिद्धात्मा-

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

नस्तेषु तथा । विशेषात्-विशेषज्ञानात् । ननु-निश्चयेन । सामान्यम्-सामान्यज्ञानम भवति-उत्पद्यते । ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीययोरुभयोर्मध्ये प्रथमं-प्रथमस्य (ज्ञाना-वरणीयस्य) नाशात् केवलज्ञानोत्पत्त्या सामान्यातिसामान्यतयाऽपि सकलस्यापि वस्तुनो ज्ञानमुत्पद्यते इति तेषां ज्ञानोपयोगानन्तरं दर्शनोपयोगो भवतीति भावः तमेव विषयं भङ्ग्योत्तरार्धेन निदर्शयति-त्रिलोक्यास्त्रैकाल्यमित्यादि । हि-निश्च-येन । अखण्डे-कैवल्ये । दर्शनगुणे-विमलमुकुरे । अखण्ड-केवल-दर्शनगुणात्मनिर्मलादर्शे त्रैकाल्यम्-भूतभविष्यवर्तमानैतत्त्रितयकालावच्छेदेन । त्रिलोक्याः-भुवनत्रयस्य प्रतिबिम्बम्-प्रतिरूपम् । "अर्चा तु प्रतेर्मायातना निधिः प्रतिरूपम् । "अर्चा प्रतेर्मा यातना निधिः । छाया छन्दः कायो रूपं बिम्बं मान-कृती अपि" ६।१८०। इत्यभिधानचिन्तामणिः । नितराम्-अतिशयेन । पतति-निपतति ।। १४ ।।[1]

शरीरं विध्वंसि प्रबलशतदुःखानि ददते,
क्षणं नो संसारे भवति वपुषो योगविरहः ।
तृतीयं वेद्याख्यं दुरितमपि दुःखाय नियतं;
महानन्देऽमन्दं सुखमपरतन्त्रं विलसति ।।१५।।

सौरभः— विध्वंसि-विनशनशीलम् । शरीरम्-देहम् । प्रबलशतदुःखानि प्रकृष्टं बलं सामर्थ्यं येषां तानि तानि शतानि-शतसङ्ख्याकानि, दुःखानि-व्यथाः प्रबलशतदुःखानि तानि तथा । "पीडा बाधा व्यथा दुःखमामनस्यं प्रसूतिजम्" इत्यमरः । ददते-ददाति । संसारे-भवपरम्परायाम् । क्षणम्-तदात्मकसूक्ष्मकालविशेष मभिव्याप्यापि । वपुषः-शरीरस्य । योगविरहः-असम्बन्धः । नो-नहि । भवति जायते । भवे सर्वदैव शरीरसम्बन्धो भवत्येवेति भावः । तृतीयम् । वेद्याख्यम्-वेद नीयम् । दुरितम्-कर्म । दुःखाय-क्लेशाय । नियतम्-निश्चितम्, नियन्त्रितमिति यावत् । महानन्दे-मोक्षे । अमन्दम्-अनल्पम्-समधिकं यथा स्यात्तथा । अपरतन्त्रम्-स्वतन्त्रम् । सुखम्-सौख्यम्, निर्वृतिरिति यावत् । विलसति-शोभते ।।१५।।

१— इतः परं पद्यमिदंपाठान्तरेणात्र लिखितमस्ति, परं व्याख्या नास्ति ।

शरीरं विध्वंसि प्रबलशतदुःखानि ददते,
ऽभवे तस्याभावात् स्ववश-सुखमन्तेन रहिताः ।
तृतीयं वेद्याख्यं शिवसदसि कर्मैव विगतं,
ततस्तत्रानन्तं सुखमपरतन्त्रं विलसति ।।१५।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

पाठान्तरम् —

वनेभूः कश्चिद्वै नगरमुपयातो नृपगृहे,
स्थितो भोगान् भुक्त्वा पुनरपि वनं सत्वरमितः।
वनस्थानां सोऽयं नगरसुखमुद्बोधयति यत्,
परं नेष्टे तद्वत् शिवसुखमिहत्येषु न गतम् ॥१६॥

सौरभः— वै-निश्चयेन। कश्चित्। वनेभूः-वनेचरः किरातादिरिति यावत्। नगरम्-पुरम्। उपयातः- उपगतः। (तत्र)-नृपगृहे-राजभवने। स्थितः। भोगान्-भोजवस्तूनि। भुक्त्वा-उपभुज्य। पुनरपि-भूयः। सत्वरम्-त्वरितम्। वनम्-काननम्। इतः-प्राप्तः। सोऽयम्-किरातः। वनस्थानाम्-वनेचराणाम्। नगरसुखम्-नगरभवमानन्दम्। यत्-यस्मात्। उद्बोधयति-प्रबोधयति। परम्-किन्तु। न-नहि। ईष्टे-प्रभवति। उद्बोधयितुमिति यावत्। तद्वत्-तेनैव प्रकारेण। शिवसुखम्-मोक्षानन्दः। इहत्येषु-भवस्थेषु। न-नहि। गतम्-ज्ञातम्। यथा किरातो नगरमागत्य तत्रत्यं सुखमुपभुज्यापि परं न तदुद्बोधयितुं प्रभवति तथा भवस्था न मोक्षसुखं वेदितुं प्रभवन्तीति भावः।

कथानकञ्चैवं प्रचलति —

"म्लेच्छः कोऽपि महारण्ये वसति स्म निराकुलः।
अन्यदा तत्र भूपालो दुष्टाश्वेन प्रवेशितः ॥ १ ॥
म्लेच्छेनासौ नृपो दृष्टः सत्कृतश्च यथोचितम्।
प्रापितश्च निजं देशं सोऽपि राज्ञा निजं पुरम् ॥ २ ॥
ममायमुपकारीति कृतो राज्ञातिगौरवात्।
विशिष्टभोगभूतीनां भाजनं जनपूजितः ॥ ३ ॥
ततः प्रासादशृङ्गेषु रम्येषु काननेषु च।
वृतो विलासिनी-सार्थैर्भुङ्क्ते भोगसुखान्यसौ ॥ ४ ॥
अन्यदा प्रावृषः प्राप्तौ मेघाडम्बर-मण्डितम्।
व्योम दृष्ट्वा ध्वनिं श्रुत्वा मेघानां स मनोहरम् ॥ ५ ॥
जातोत्कण्ठो दृढं जातोऽरण्यवासगमं प्रति।
विसर्जितश्च राज्ञापि प्राप्तोऽरण्यमसौ ततः ॥ ६ ॥
पृच्छन्त्यरण्यवासास्तं नगरं तात कीदृशम्।
स स्वभावान् पुरः सर्वान् जानात्येव हि केवलम् ॥ ७ ॥
न शशाकतमां तेषां गदितं स कृतोद्यमः।
वने वनेचराणां हि नास्ति सिद्धोपमा तथा ॥ ८ ॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

महामोहोद्रेकात् क्षणविलयि सङ्कल्पकलितं,
सुखं दुःखाभिन्नं भवति भवभावे भवभृताम्।
परं मुक्तौ मोहक्षयजनित आत्मानमभितः,
परानन्दस्पन्दो नियमितममन्दं रमयति ॥१७॥

सौरभः— भवभृताम्-संसारिजीवानाम्। भवभावे-सांसारिक-स्थितौ। महामोहोद्रेकात्-महामोहप्राबल्यात्। क्षणविलयि-क्षणविनश्वरम्, क्षणविध्वंसीति यावत्। सङ्कल्पकलितम्-मानसिककर्मजनितम्। "सङ्कल्पः कर्ममानसम्" इत्यमरः, अथवा-क्षणविलयिसङ्कल्पकलितम् 'इत्येकं पदम्' तथा च-क्षणविलयी यः सङ्कल्पस्तेन कलितं तथेति व्याख्येयम्। सुखम्-शर्म। दुःखाभिन्नम्-दुःखसाभिन्नम्, दुःखरूपमेवेति यावत्। भवति-जायते। परम्-किन्तु। मुक्तौ-मोक्षस्थितौ। मोहक्षयजनितः-मोहात्यन्तं विनाशोद्भवतः। परानन्दस्पन्दः-महानन्दसञ्चारः। नियमितम्-निश्चितम्। अमन्दम्-अनल्पम्, सातिशयमिति यावत्। अभितः-सर्वतः। आत्मानं-चेतनम्। रमयति-क्रीडयति। परमानन्दरूपतामधिगमयतीति यावत्।

अधोरन्ध्रे तिर्य्यग्गतिगतभवे मानवगतौ,
सुरेऽस्मिन् संसारे सततमटनं वै व्यवसितम्।
स्थितिः स्यात् सिद्धानां क्षयविरहिताऽऽयुष्यविगमाद्,
गुणं वन्दे कान्तं निरुपममकान्तं तमकलम् ॥१८॥

सौरभः— अधोरन्ध्रे-पाताले, नरकगताविति यावत्। तिर्य्यग्गतिगतभवे-तिर्य्यग्गतौ। मानवगतौ-मनुष्यगतौ। सुरे-देवगतौ। (इति)। अस्मिन्-चातुर्गतिके। संसारे-भवे। वै-निश्चयेन। सततम्-निरन्तरम्। अटनम्-भ्रमणम्। व्यवसितम्-विहितम्। सिद्धानाम्-सिद्धिमितानाम्। आयुष्यविगमात्-आयुर्विरहितत्वात्। क्षयविरहिता-अक्षया। स्थितिः-अवस्थानम्। स्यात्-भवेत्। तम्-प्रसिद्धम्। कान्तम्-मनोहरम्। अकान्तम्-दुःखविनाशकम्। निरुपमम्-अतुलनीयम्। अकलम्-निष्कलम्। गुणम्-अक्षयस्थित्यात्मकम्। वन्दे-अभिवादये ॥ १८ ॥

यथा चित्रं नानाविधमुपनयेच्चित्रकृदलं,
तथा नामात्मानं नटयति विचित्रं भवपुरे।
स्वरूपं नीरूपं भवति भवमुक्तेऽनुपमितं,
न केषां तच्चित्रं जनयति पवित्रं समुदितम् ॥१९॥

सौरभः— यथा-येन प्रकारेण। चित्रकृत्-आलेख्यकृत्। नानाविधम्-अनेक-

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

प्रकारम् । चित्रम्-आलेख्यम् । अलम्-पर्य्याप्तं । यथास्यात्तथा । उपनयेत्-प्रापयेत् । तथा तेन प्रकारेण । नाम-नामनामकं षष्ठं कर्म । भवपुरे-भवः संसार एव पुरं नगरं भवपुरं तस्मिंस्तथा । आत्मानम्-जीवम् । विचित्रम्-नानाप्रकारेण । नटयति-नर्तयति । भवमुक्तै-भवात्-संसाराज्जन्मनो वा मुक्तो भवमुक्तः सिद्धस्तस्मिस्तथा । स्वरूपम्-नीरूपम्-वर्णादिरहितम् । भवति-जायते । निरुपमम्-अनुपमितम् । पवित्रम्-विशुद्धम् । समुदितम्-समुत्पन्नम् । तत्-नीरूपं स्वरूपम् । केषाम् । जनानामिति शेषः । चित्रम्-आश्चर्यम् । न-नहि । जनयति-समुत्पादयति । अपि तु सर्वेषामिति भावः ।। २० ।।

कुले जन्म-प्राप्तेर्भवति गुरुता सम्मदकरी,
भवे दुर्वंशाप्तेरनभिजनता लाघवकरी ।
न गोत्रं सिद्धानामगुरु-लघुभावो भवति तां,
नमो नित्यं तस्मै गतगुरुलघुत्वाय महसे ।।२०।।

सौरभः— भवे-संसारे । कुले-अभिजने-सत्कुले इति यावत् । जन्मप्राप्तेः-जननाधिगमात् । सम्मदकरी-प्रमोदावहा । "मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षः प्रमोदामोदसम्मदाः" **इत्यमरः** । गुरुता-गुरुत्वबुद्धिः । भवति-जायते । दुर्वंशाप्तेः-दुष्कुलजन्माधिगमात् । अनभिजनता-अकुलीनता । लाघवकरी-लघुतापादिका, "अहं लघुः"-इत्याकारक-लघुत्वबुद्धि-सम्पादिकेति यावत् । भवतीति शेषः । सिद्धानाम्-मुक्तानाम् । गोत्रम्-नाम, कुलञ्च । तन्त्रत्वादिति बोध्यम् । "सकृदुच्चरितस्य शब्दस्यानेकार्थ-बोधकत्वं तन्त्रत्वम्" इति स्मरणात् । "नाम गोत्रं कुलं गोत्रं गोत्रश्च धरणीधरः"-इति **कोशः** । तत्-तस्मात् । गुरुलघुभावः-गुरुतालघुत्वे । न-नहि । भवति-जायते । गतगुरुलघुत्वाय-अगुरुलघुगुणाय, गौरवलाघवरहितायेति-यावत् । महसे-तेजोरूपाय । तस्मै-प्रसिद्धाय, सिद्धायेति यावत् । नित्यम्-सदा । नमः-नमस्कारः । अस्त्विति शेषः ।। २१ ।।

न दानं नो लाभो लसति न च भोगोऽपि परमो—
पभोगोवीर्य्यं वा भव-भवनगानामभिमतम् ।
धनं विघ्नं निघ्नं शिव-सदसि निघ्नन्ति वशिनो,
लभन्ते चानन्तं वितरणमुखं, पञ्चकमहो! ।।२१।।

सौरभः— भवभवनगानाम्-भवः-संसार एव भवनमायतनं भवभवनन्तत्र-गच्छन्तीति भव-भवनगास्तेषां तथा, संसारिणामिति यावत् । अभिमतम्-अभीष्टमनुकूलमिति यावत् । दानम्-वितरणम् । न-नहि । संसारिणः-कामं न वितरीतुं

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

शक्नुवन्तीति भावः। लाभः-धनादि-प्राप्तिः। नो-नहि। लसति-शोभते। भोगः-स्रक्चन्दनाङ्गानादिसेवनम्। अपि-खलु। न च-नैव। परमोपभोगः-स्वर्गादिलौकिक-सुखसाक्षात्कारः। वा-अथवा। वीर्य्यम्-विक्रमः। न च लसतीत्युभयत्रानुबन्धनीयम्। वशिनः-स्वायत्ताः, जितेन्द्रियाः सिद्धा इति यावत्। विघ्नम्-अन्तरायकर्म। निघ्नम्-स्वायत्तं यथा स्यात्तथा। निघ्नन्ति-समूलकाषं कषति, समुन्मूलयतीति यावत्। च-पुनः। शिव-सदसि-सिद्धस्थाने। अनन्तम्-अपरिमितम्, अपरिमितकालावस्थायीति यावत्। वितरणमुखम्-दानप्रमुखम्। पञ्चकम्-दानलाभभोगोपभोग-वीर्यात्म-पञ्चनिकुरम्बम्। लभन्ते-प्राप्नुवन्ति ॥ २२ ॥

अथाचार्य्य-गुणमाला

न नारीणां स्पर्शं कमलदलवत्कोमलमलं;
समीहन्तेऽस्वप्ने विदितकरि-कष्टा वशिवराः।
सहन्ते शीतोष्णं वरणरहिता आत्मनिहिताः,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ॥२२॥

सौरभः— विदितकरिकष्टाः-विदितं ज्ञातं करिणां हस्तिनां कष्टं क्लेशो यैर्येषां वा ते तथा। वशिवराः-जितेन्द्रियश्रेष्ठाः। कमलदलवत्-शतपत्र-पत्रवत्। कोमलम्-सुकुमारम्। नारीणाम्-स्त्रीणाम्। स्पर्शम्। अलम्-अत्यर्थम्। स्वप्ने निद्रायाम्। अपीत्यर्थतो गम्यम्। न-नहि। समीहन्ते-कामयन्ते। आत्मनि-आत्म-विषये। हिताः-उपकारकाः, स्वात्मोपस्कारका इति यावत्। वरणरहिताः-अप्रतिहताः, शीतातपादि-प्रयोज्यक्लेश-त्राणापहच्छत्रोपानहादि-विरहिता इति यावत्। शीतोष्णम्-शीतञ्च तदुष्णञ्च शीतोष्णं तत्तथा। शैत्यमातपञ्चेति यावत्। सहन्ते मर्षयन्ति। चारुचरितान्-रमणीयशीलान्। प्रवर-वशिनः-प्रवराः-श्रेष्ठाश्च वशिनोऽपरतन्त्राः प्रवरवशिनस्तांस्तथा। तान्-प्रसिद्धान्। आचार्य्यान्-सूरिवरान्। स्तुवे-स्तौमि ॥ २३ ॥

स्वदन्ते स्वारस्यान्नवनवरसं ये रसनया,
लभन्ते सन्तापं विरसमनिशं मीनवदिमे।
इति ज्ञात्वा लौल्यं विदधति न विज्ञाः कथमपि,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ॥२३॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

सौरभः— ये-बुद्धिविषयाः । नरा इति शेषः । स्वारस्यात्-स्वाभिप्रायात्, स्वेच्छानुसारमिति यावत् । रसनया-जिह्वया रसज्ञयेति यावत् । नवनवरसम्-नूतननूतनमधुराम्ललवण-कटुकषायादि-नानाभेद-भिन्नरसम् । स्वदन्ते-आस्वादयन्ति । रासनप्रत्यक्षविषयं कुर्वन्तीति यावत् । इमे-ते । इदं शब्दस्य-तच्छब्दार्थता-दर्शनात् । मीनवत्-मीनैर्मत्स्यैस्तुल्यं तथा । अनिशम्-सततम् । "सन्तानारताश्रान्त-सन्तताविरतानिशम्" **इत्यमरः** । विरसम्-वैरस्यापादकं यथा स्यात्तथा । सन्तापम्-संज्वरम् । "सन्तापः संज्वरः समौ" **इत्यमरः** । लभन्ते-समासादयन्ति । इति-इत्थम् । ज्ञात्वा-मत्वा । विज्ञाः-लोकशास्त्रविचक्षणा महानुभावाः । कथमपि-केनापि प्रकारेणापि । लौल्यम्-रसनाचापल्यम् । भोज्योपभोग्यपदार्थ-सार्थाऽऽदित्साचापल्य-मिति यावत् । न-नहि । विदधति-कुर्वन्ति । स्तुवे तानित्यादिचरम-पादवाक्यं यथा-व्याख्यातमवसेयम् ।। २३ ।।

द्विरेफा अम्भोजे जहति करणं नक्र-निहता,
जना गन्धासक्तास्तनुमतनुविस्रां दधति तत् ।
स्वजन्ते नात्यन्तं परिमलपथे स्वस्थ-मनसः,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ।।२४।।

सौरभः— द्विरेफाः-मधुकराः । नक्रनिहताः-नक्रेण-नासिकया । घ्राणेन्द्रि-येणेति यावद्, हता-मारिताः स्ववशप्रापिता इति तथा । गन्धज्ञा-नासिका । नासा-घ्राणं । घोणा विकूणिका । "नक्रं नर्कुटकं" ३।२०० । **इत्यभिधान-चिन्तामणिः ।** अम्भोजे-कमले । करणम्-शरीरम् । "करणं साधकतमं क्षेत्रगात्रेन्द्रियेष्वपि" इति **मेदिनी** । "इन्द्रियातनुमङ्गविग्रहौ क्षेत्रगात्रतनुमूधनास्तनूः । मूर्तिमत्करणकाय मूर्तयो वेर-संहनन-देहसंचराः" ३।२२७ ।। **इत्यभिधान-चिन्तामणिः** । जहति-त्यजन्ति । घ्राणेन्द्रियवशीभूतप्रवृत्ता म्रियन्त इति भावः । जनाः-लोकाः । गन्धासक्ताः-गन्धा-घ्राणप्रवणाः सन्तः । अतनुविस्राम्-दुर्गन्धान्विताम् । तनुं-शरीरम् । दधति-धारयन्ति । प्रायेण गन्धासक्ता जनाः परिणामेऽत्यन्तदुर्गन्धशरीरा भवन्तीति शेषः । तत्-तस्माद् हेतोः । स्वस्थमनसः-विशुद्धहृदयाः । परिमलपथे-गन्धमार्गे । अत्यन्तम्-अतीव, सातिशयमिति यावत् । न-नहि । स्वजन्ते-आसक्ता भवन्ति । स्तुवे तानाचार्य्या-नित्यादिवाक्यं व्याख्यातपूर्वं द्रष्टव्यम् ।। २४ ।।

विशुद्धं स्वं रूपं समधिगतवन्तो गणधराः,
परस्मिन् रूपेऽस्मिन् न खलु विलसन्ति क्षणमपि ।
अयन्ते नो मृत्युं शलभवदमी रूपपतनात् ,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ।।२५।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

सौरभः— विशुद्धम्-निर्मलम् । स्वम्-आत्मीयम्, स्वीयमिति यावत् । स्वरूपम्, आत्मतत्त्वमिति यावत् । समधिगतवन्तः-समासादितवन्तः । गणधराः-श्रीगौतमस्वामि-प्रमुखगणिनः । परस्मिन्-अन्यस्मिन्, आत्मतत्त्वभिन्ने इति यावत् । अस्मिन्-लोकप्रत्यक्षविषये, पौद्गलिके इति यावत् । रूपे-चक्षुर्मात्रग्राह्यगुणे कामिनी-कमनीयत्वादौ च । रूपं तु लोकशब्दयोः । पाशावाकारे सौन्दर्ये नाणके नाटकादिके । ग्रन्थावृत्ती स्वभावे च" ति **हैमानेकार्थः** । खलु-निश्चयेन । क्षणमपि-तदात्मक-सूक्ष्मकालविशेषमभिव्याप्यापि । न-नहि । विलसन्ति-शोभन्ते । अमी-गणधराः । रूपपतनात्-सौन्दर्यसमासक्तत्वात् । शलभवत् - शलभैः पतङ्गैस्तुल्यन्तथा । मृत्युम्-मृतिम् । नो-नहि । अयन्ते-लभन्ते । शलभा यथा रूपमात्राकृष्टा अभ्यग्निं पतन्तो म्रियन्ते न तथा ते कामिनीकमनीयत्वाद्याकृष्टा निकृतिं यान्तीति भावः । प्रवरवशिनः, चारुचरितान् तान् आचार्य्यान् स्तुवे ॥ २५ ॥

जिनेन्द्राणां वाक्यामृत-हितरसः कर्णकुहरं,
प्रविष्टो येषां ते न खलु गणिनो यन्ति कुगतिम् ।
प्रगीतैः सङ्गीतैः क्वचिदपि यथा हन्त हरिणाः,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ॥२६॥

सौरभः— जिनेन्द्राणाम्-श्रीमदीश्वर-प्रमुख-जिनेश्वराणाम् । वाक्यामृतहितरसः-वचनात्मपीयूषवदुपकारकरसः । येषाम्-बुद्धिविषयाणां गणिनामिति यावत् । कर्णकु-हरम्-श्रवणविवरम् । प्रविष्टः-प्राविशत् । ते-बुद्धिविषयाः । गणिनः-गणधराः, आचार्य्या इति यावत् । प्रगीतैः-प्रकर्षेण गीतानि-गानकर्मीकृतानि प्रगीतानि तैस्तथा । सङ्गीतैः, हरिणाः-मृगाः । तेषां गीतप्रियत्वात् । **'कुरङ्ग मातङ्ग पतङ्ग-भृङ्ग-मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च । एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ।"** इति श्रवणात् हरिणानां श्रोत्रेन्द्रियहतत्वमव-सेयम् । यथा-इव । क्वचिदपि-कुत्रापि । देशे काले विषये चेत्यर्थः । कुगतिम्-दुर्द-शाम् । न-नहि । यन्ति-प्राप्नुवन्ति । खलु-निश्चयेन । हन्त-हर्षे । हन्त वाक्यारम्भ-खेदविस्मयाऽऽमोदसम्भ्रमे" इति **मेदिनी** । प्रवरवशिनः चारुचरितान् तान् आचा-र्य्यान् स्तुवे ॥ २६ ॥

न यत्र स्यात् स्त्रीणां वसतिरथ तिर्यग्गतिमतां,
न च क्लीबानां वा विदधतितमां तत्र वसतिम् ।
विशुद्धः स्वाध्यायः प्रभवति यथा ध्यानविसरः,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ॥२७॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

सौरभः— यत्र-यस्मिन् स्थले। स्त्रीणाम्-सीमन्तिनीनाम्। "स्त्री योषिदबला योषा नारी सीमन्तिनी वधूः" **इत्यमरः**। अथ-समुच्चये। "अथ समुच्चये। मङ्गले संशयारम्भाधिकारानन्तरेषु च" इति **हैमानेकार्थः**। तिर्य्यग्गतिमताम्-तिरश्चाम्, पशुपक्ष्यादीनामिति यावत्। वसतिः-निवासः। न-नहि। स्यात्-भवेत्। वा-अथवा। क्लीबानाम्-नपुंसकानाम्, तृतीयप्रकृतीनामिति यावत्। (वसतिः) न च-न खलु। भवेदिति शेषः। तत्र-तस्मिंस्थले। वसतिम्-वासम्। यथाकालमित्यर्थवशसम्पन्नम्। विदधतितमाम्-कुर्वन्ति। यथा-येन प्रकारेण। विशुद्धः अतिनिर्मलः। स्वाध्यायः- अध्यापनादिना धर्मप्रचारः। ध्यानविसरः-भावनाप्रकरः। प्रभवति-समुपपद्यते। प्रवरवशिनश्चारुचरितान् तान् आचार्य्यान्। स्तुवे-स्तवीमि ॥ २७ ॥

> असौ बाला बाला युवतिरियमुद्यद्गतिमति—
> स्तथा मुग्धा-दुग्धालय-कलसपीना पुनरसौ।
> न सुभ्रूणामित्थं[1] विदधति कथा ब्रह्मणि रता—
> स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ॥२८॥

सौरभः— ब्रह्मणि-आत्मनि। रताः-निरताः। आत्मनिरत-चेतस इति यावत्। "असौ-इत्थम्। बाला-कुमारी। बाला-लावण्यकान्ति-परिपूरितवदना बाला। अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनिः। "कदली कदलीत्यादिवत्।" इयम्-एषा। युवतिः-तरुणी। उद्यद्गतिमतिः-उद्यन्ती गतिर्गमनं दशा च मतिर्बुद्धिश्च यस्याः सा तथा। तथा-किञ्च। मुग्धा-अप्राप्तयौवना। असौ-पुनः। दुग्धालय-कलसपीना-दुग्धस्य-क्षीरस्य आलयौ, आधारभूतौ इति यावत् तौ चासौ कलसौ पयोधराविति यावत्। ताभ्यां पीना, तयोस्तदवच्छेदेन पीना, पीनस्तनीति यावत्। इत्थम्-अनेन प्रकारेण। सुभ्रूणाम्-सुष्ठु भ्रुवौ नेत्रोपरितनभागौ यासां ताः सुभ्रुवः सुनयना इति यावत्। तासां तथा। कथाः-गोष्ठीः विचारणा इति यावत्। न-नहि। विदधति-कुर्वन्ति। प्रवरवशिनः चारुचरितान्, तान्, आचार्य्यान् स्तुवे-स्तवीमि ॥२८॥

> निविष्टा यद्देशे क्षणमपि मृगाक्षी तदवनौ,
> श्रयन्ते नो स्थित्या जितमनसिजा जातुचिदपि।
> अणूनां सञ्चाराद्वृत्तिरुदयते तत्र कृतिनः,
> स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ॥२९॥

सौरभः— यद्देशे-यस्मिन् प्रदेशे, यत्स्थानावच्छेदेनेति यावत्। क्षणमपि-

---

१— "इतीत्थं नो स्त्रीणां" इति पाठान्तरम्।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

सौरभः— विशुद्धम्-निर्मलम् । स्वम्-आत्मीयम्, स्वीयमिति यावत् स्वरूपम्, आत्मतत्त्वमिति यावत् । समधिगतवन्तः-समासादितवन्तः । गणधराः श्रीगौतमस्वामि-प्रमुखगणिनः । परस्मिन्-अन्यस्मिन्, आत्मतत्त्वभिन्ने इति यावत् अस्मिन्-लोकप्रत्यक्षविषये, पौद्गलिके इति यावत् । रूपे-चक्षुर्मात्रग्राह्यगुणे कामिनी कमनीयत्वादौ च । रूपं तु लोकशब्दयोः । पाशावाकारे सौन्दर्ये नाणके नाटकादिके ग्रन्थावृत्तौ स्वभावे चे" ति **हैमानेकार्थः** । खलु-निश्चयेन । क्षणमपि-तदात्मक-सूक्ष्मकालविशेषमभिव्याप्यापि । न-नहि । विलसन्ति-शोभन्ते । अमी-गणधराः रूपपतनात्-सौन्दर्यसमासक्तत्वात् । शलभवत् - शलभैः पतङ्गैस्तुल्यन्तथा मृत्युम्-मृतिम् । नो-नहि । अयन्ते-लभन्ते । शलभा यथा रूपमात्राकृष्टा अग्नि पतन्तो म्रियन्ते न तथा ते कामिनीकमनीयत्वाद्याकृष्टा निकृतिं यान्तीति भावः प्रवरवशिनः, चारुचरितान् तान् आचार्य्यान् स्तुवे ॥ २५ ॥

जिनेन्द्राणां वाक्यामृत-हितरसः कर्णकुहरं,
प्रविष्टो येषां ते न खलु गणिनो यन्ति कुगतिम् ।
प्रगीतैः सङ्गीतैः क्वचिदपि यथा हन्त हरिणाः,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ॥२६॥

सौरभः— जिनेन्द्राणाम्-श्रीमदीश्वर-प्रमुख-जिनेश्वराणाम् । वाक्यामृतहितरसः-वचनात्मपीयूषवदुपकारकरसः । येषाम्-बुद्धिविषयाणां गणिनामिति यावत् । कर्णकुहरम्-श्रवणविवरम् । प्रविष्टः-प्राविशत् । ते-बुद्धिविषयाः । गणिनः-गणधराः, आचार्य्या इति यावत् । प्रगीतैः-प्रकर्षेण गीतानि-गानकर्मीकृतानि प्रगीतानि तैस्तथा । सङ्गीतैः, हरिणाः-मृगाः । तेषां गीतप्रियत्वात् । '**कुरङ्ग मातङ्ग पतङ्ग-भृङ्ग-मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च । एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ।**" इति श्रवणात् हरिणानां श्रोत्रेन्द्रियहतत्वमवसेयम् । यथा-इव । क्वचिदपि-कुत्रापि । देशे काले विषये चेत्यर्थः । कुगतिम्-दुर्दशाम् । न-नहि । यन्ति-प्राप्नुवन्ति । खलु-निश्चयेन । हन्त-हर्षे । हन्त वाक्यारम्भखेदविस्मयाऽऽमोदसम्भ्रमे" इति **मेदिनी** । प्रवरवशिनः चारुचरितान् तान् आचार्य्यान् स्तुवे ॥ २६ ॥

न यत्र स्यात् स्त्रीणां वसतिरथ तिर्य्यग्गतिमतां,
न च क्लीबानां वा विदधतितमां तत्र वसतिम् ।
विशुद्धः स्वाध्यायः प्रभवति यथा ध्यामविसरः,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ॥२७॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

सौरभः— यत्र-यस्मिन् स्थले। स्त्रीणाम्-सीमन्तिनीनाम्। "स्त्री योषिद-बला योषा नारी सीमन्तिनी वधूः" **इत्यमरः**। अथ-समुच्चये। "अथ समुच्चये। मङ्गले संशयारम्भाधिकारानन्तरेषु च" इति **हैमानेकार्थः**। तिर्य्यग्गतिमताम्-तिरश्चाम्, पशुपक्ष्यादीनामिति यावत्। वसतिः-निवासः। न-नहि। स्यात्-भवेत्। वा-अथवा। क्लीबानाम्-नपुंसकानाम्, तृतीयप्रकृतीनामिति यावत्। (वसतिः) न च-न खलु। भवेदिति शेषः। तत्र-तस्मिन्स्थले। वसतिम्-वासम्। यथाकाल-मित्यर्थवशसम्पन्नम्। विदधतितमाम्-कुर्वन्ति। यथा-येन प्रकारेण। विशुद्धः अतिनिर्मलः। स्वाध्यायः- अध्यापनादिना धर्मप्रचारः। ध्यानविसरः-भावनाप्रकरः। प्रभवति-समुपपद्यते। प्रवरवशिनश्चारुचरितान् तान् आचार्य्यान्। स्तुवे-स्तवीमि ॥ २७ ॥

असौ बाला बाला युवतिरियमुद्यद्गतिमति—
स्तथा मुग्धा-दुग्धालय-कलसपीना पुनरसौ।
न सुभ्रूणामित्थं[1] विदधति कथा ब्रह्मणि रता—
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ॥२८॥

सौरभः— ब्रह्मणि-आत्मनि। रताः-निरताः। आत्मनिरत-चेतस इति यावत्। "असौ-इत्थम्। बाला-कुमारी। बाला-लावण्यकान्ति-परिपूरितवदना बाला। अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनिः। "कदली कदलीत्यादिवत्।" इयम्-एषा। युवतिः-तरुणी। उद्यद्गतिमतिः-उद्यन्तो गतिर्गमनं दशा च मतिर्वुद्धिश्च यस्याः सा तथा। तथा-किञ्च। मुग्धा-अप्राप्तयौवना। असौ-पुनः। दुग्धालय-कलसपीना-दुग्धस्य-क्षीरस्य आलयौ, आधारभूतौ इति यावत् तौ चासौ कलसौ पयोधराविति यावत्। ताभ्यां पीना, तयोस्तदवच्छेदेन पीना, पीनस्तनीति यावत्। इत्थम्-अनेन प्रकारेण। सुभ्रूणाम्-सुष्ठु भ्रूवौ नेत्रोपरितनभागौ यासां ताः सुभ्रुवः सुनयना इति यावत्। तासां तथा। कथाः-गोष्ठीः विचारणा इति यावत्। न-नहि। विदधति-कुर्वन्ति। प्रवरवशिनः चारुचरितान्, तान्, आचार्य्यान् स्तुवे-स्तवीमि ॥२८॥

निविष्टा यद्देशे क्षणमपि मृगाक्षी तदवनीं,
श्रयन्ते नो स्थित्या जितमनसिजा जातुचिदपि।
अणूनां सञ्चाराद्रतिरुदयते तत्र कृतिनः,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ॥२९॥

सौरभः— यद्देशे-यस्मिन् प्रदेशे, यस्स्थानावच्छेदेनेति यावत्। क्षणमपि-

---

१— "इतीत्थं नो स्त्रीणां" इति पाठान्तरम्।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

तदात्मकसूक्ष्मकालमभिव्याप्य खलु । मृगाक्षी-मृगस्य हरिणस्याक्षिणी नयने इवाक्षिणी यस्याः सा तथा । निविष्टा-उपविष्टा । भवेदिति शेषः । जितमनसिजाः-विजितमदनाः । गणिन इति शेषः । जातुचित्-कदाचित् । अपि-खलु । तदवनीम्-तद्भूमिम् । क्षणमपि मृगाक्षी-समाश्रितस्थानमिति यावत् । स्थित्या-अवस्थानेन नो-नहि । श्रयन्ते-सेवन्ते । तत्र-न तिष्ठन्तीति भावः । "अणूनाम्-परमाणूनाम् सञ्चारात्-संचरणात् । रतिः-अनुरागः । उदयते-उत्पद्यते" तत्र-तद्विषये कृतिन विचक्षणाः सावधाना इति यावत् । चारुचरितान्-प्रवरवशिनस्तान् आचार्यान् स्तुवे ॥ २९ ॥

स्त्रीणां यद्वत् —

नरा नारीणां यद् विकृतिजननाङ्गानि नयने,
निधायान्तर्मोहं मनसिजमथानीय विफलम् ।
लभन्ते सन्तापं मनसि न तथाऽलीकवितथाः,
स्तुवे तानाचार्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ॥३०॥

सौरभः— नराः-पुरुषाः । यद्वत्-यथा । स्त्रीणाम् नारीणाम् । विकृतिजननाङ्गानि-विकारजनकशरीरावयवान् । नयने-नेत्रे निधाय-संस्थाप्य, कृत्वेति यावत् अन्तः-हृदये । मोहम्-मूढताम् (लभन्ते) । अथ-अनन्तरम् । मनसिजम्-कामम् विफलम्-व्यर्थम् । आनीय-कृत्वा । विफलकामा भवन्त इति यावत् । मनसि-चेतसि सन्तापम्-संज्वरम् । "सन्तापः संज्वरः समौ" इत्यमरः । तथा-तेन प्रकारेण अलीकवितथाः-अलीकं वितथमसत्यं येषान्ते तथा । सर्वदा सत्यभाषणनिरता इति यावत् । न-नहि । लभन्ते इति शेषः । चारुचरितान्-प्रवरवशिनस्तान् आचार्यान् स्तुवे ॥ ३० ॥

निवासो दम्पत्योर्भवति यदि कुड्यान्तरगतः,
स्मरार्ता तद्वार्ता श्रुतिपथमनभ्यासमयते ।
इति ज्ञात्वा स्थानं जहति तदमी संयतपथाः,
स्तुवे तानाचार्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ॥३१॥

सौरभः— यदि-चेत् । कुड्यान्तरगतः-केवलभित्तिव्यवहितः । दम्पत्योः-जाया च पतिश्च दम्पती तयोस्तथा । निवासः-अवस्थानम् । भवति-जायते । तत्-तदा । स्मरार्ता-स्मरेण कामेनाऽऽर्ता विलग्ना रत्यभिव्यक्तिजवेति यावत् । वार्ता-प्रवृत्तिः । दम्पतिभणितिरिति यावत् । अनायासम्-अनवधानेनापि । श्रुतिपथम्-श्रवणगोचरताम् । अयते-प्राप्नोति । इति-इदम् । ज्ञात्वा-अवगत्य । अमी-एते

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

संयतपयाः-संयमिनो गणिवराः । तत्-भित्तिमात्रव्यवहित-दम्पत्याधारभूतम् । स्थानम्-स्थलम् । जहति-त्यजन्ति । प्रवरवशिनश्चारुचरितान्; तान् आचार्य्यान्, स्तुवे ।। ३१ ।।

सलज्जं निर्लज्जं निधुवनमतान्यङ्गनतया,
त्वयेति स्मृत्वा किं व्यथयति मनोऽपि क्षणमपि ।
यदीयं ये लोके ननु न विकलाः सामयिकवत्,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ।।३२।।

सौरभवृत्तिः— सलज्जम्-लज्जया त्रपया सहितं यथा स्यात्तथा, निर्लज्जम्-लज्जाया निर्गतं लज्जाविरहितं यथा स्यात्तथा । अङ्गनतया-अङ्गैः स्तनादिभिरवयवैर्नताऽङ्गनता 'स्तोकनम्रा स्तनाभ्या' मिति यावत् । तथा-तथा अथवा अङ्नायाः प्रमदाया भावोऽङ्गनता तया-तथा । विशेषास्त्वङ्गना भीरुः कामिनी कामलोचना, 'प्रमदेत्यमरः । त्वया । निधुवनम्-सुरतम् । अतानि-व्यधायि । इति-इत्थम् । स्मृत्वा-चिन्तयित्वा । अपि-खलु । यदीयम्-यत्सम्बन्धि । मनः-अन्तःकरणम् । व्यथयति-किं विकलतामनुभवति किमु ? नैवानुभवतीति यावत् । ये-बुद्धिविषयाः-सूरिणः । लोके-जगति । सामायिकवत्-सामयिकेन तुल्यन्तथा । "सामयिको हि पूर्वतृतीयभवे आर्द्रकुमारजीवः । तथा च तद्वृत्तम् ।। ३२ ।।

भवादस्मतत्तृतीयेऽहं भवे कौटुम्बिककोऽभनम् ।
श्रीवसन्तपुरे सामयिको बन्धुमतीपतिः ।।
अन्येद्युः सुस्थिताचार्य्याद् धर्मं श्रुत्वा प्रियायुतः ।
आत्तव्रतः क्रमाज्जातो गीतार्थो गुरुसन्निधौ ।।
रागवानेकदाऽभूवं पश्यन् बन्धुमतीं प्रियाम् ।
निजाभिप्रायमाख्याञ्च पुरस्तस्याः स्वयोषितः ।।
सा तु स्वशीलरक्षार्थं हित्वा प्राणान् निजान् क्षणात्
गृहीतानशना शुक्ललेश्यया देवतामगात् ।।
वीक्ष्येत्युत्पन्न-वैराग्यरङ्गोऽनशनमाश्रयम् ।
समाधिना मृतिं प्राप्याऽभूवं च त्रिदशस्ततः ।।इति।।

ननु निश्चयेन । न-नहि । विकलाः-व्यग्रमनसः भवन्तीति शेषः । प्रवरवशिनश्चारुचरितान् तान् आचार्य्यान् स्तुवे । इति ।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

घृतं दुग्धं भोज्यं मदन-कदनायैव नियतं,
ततो भूत्वा भोज्याद् विकृतिजनकाद् दूरमनिशम्।
तपस्यालीलानां कथमपि मनो नैव विकृतं,[1]
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ॥३३॥

सौरभवृत्तिः— भोज्यम्-भक्षणीयम्। घृतम्-नवनीतम्। दुग्धम्-क्षीरम्। नियतम्-निश्चितम्। मदनकदनाय-कामोद्रेकाय। एव-खलु। भवतीति-शेषः। अतः-तस्माद् हेतोः। विकृतिजनकात्-विकारोत्पादकात्। भोज्यात्-भक्षणीयपदार्थात्-घृतदुग्धादेरिति यावत्। अनिशम्-सततम्। दूरम्-विप्रकृष्टम्। भूत्वा, स्थितानामिति शेषः। तपस्यालीलानाम्-तपोनिरतानाम्। सूरिवर्गाणामिति शेषः। मनः-अन्तःकरणम्। कथमपि-केनापि प्रकारेण। विकृतम्-अधिगतविकारम्। नैव-न खलु। भवतीति शेषः। प्रवरवशिनः चारुचरितान्, तान् आचार्यान् स्तुवे॥ ३३॥

मितं रूक्षं भक्ष्यं तदपि विहितं शास्त्रवचनै—
र्हितं तद्गृह्णन्ति प्रभवति समाधिर्यदचिरम्।
ततः कामं निघ्नन्त्यरि-निकरमन्तः सुमनसः,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ॥३४॥

सौरभवृत्तिः— सुमनसः-धीरा आचार्य्याः। मितम्-परिमितम् स्वल्पमिति यावत्। रूक्षम्-घृतादिप्रयोज्यसंसृष्टतादिविरहितम्। यद्यपीति शेषः। तदपि-तथापि। शास्त्रवचनैः-आगमसम्बन्ध्याहारादि-नियामकवाक्यैः। हितम्-उपकारकम्। विहितम्-कृतम्। तत्-बुद्धिविषयीभूतम्। भक्ष्यम्-भोजनीयं वस्तु। गृह्णन्ति-उपयुज्यते, उपाददत इति यावत्। यत्-यस्मात्। अचिरम्-शीघ्रम्। समाधिः-एकतानतापन्नं ध्यानम्। प्रभवति-समुत्पद्यते। ततः-तस्माद्धेतोः' मितरूक्षाऽऽगम-विहितपथ्याऽऽहारोपयोगादेवेति यावत्। अन्तः-आभ्यन्तरम्। कामक्रोधादिकमिति यावत्। अरिनिकरम्-शत्रुसमूहम्। कामम्-पर्याप्तं यथास्यात्तथा। निघ्नन्ति-समूलकाषं कषन्ति समुन्मूलयन्तीति यावत्। प्रवरवशिनश्चारुचरितान् तान् आचार्य्यान् स्तुवे॥ ३४॥

कचानां संस्कारो वपुषि च[2] विभूषा-विरचनं,
लघु-स्नानाभ्यङ्गौ तनुमतनुतापां जनयतः।

१— विकृतिमिति पाठा०। २— न इति पाठा०।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

इति ज्ञात्वा काये किमपि नहि शोभां विदधते,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ।।३५।।

सौरभवृत्तिः— कचानाम्-केशानाम् । संस्कारः-परिमार्जनम्, सुरभितैलादिनातिशुश्रूषेति यावत् । तनुम्-तनूम् । अतनुतापाम्-समधिकसन्तापाम् जनयतीति शेषः । वपुषि-शरीरे । च-पुनः । विभूषाविरचनम्-कटककुण्डलाद्यलङ्कारघटनम् । तनुं तथा जनयतीति शेषः । लघुस्नानाभ्यङ्गौ-स्वल्पाभिषेकाङ्गरागौ । तनुम्, अतनुतापाम् । जनयतः-कुरुतः । इति-इदम् । ज्ञात्वा विदित्वा । काये-शरीरे । किमपि । शोभाम्-छविम् । नहि-नैव । विदधते-कुर्वन्ति । प्रवरवशिनस्तान् चारुचरितान् आचार्य्यान् स्तुवे ।। ३५ ।।

रुषाविष्टाः कामं ज्वलदनलसन्तप्तमनसो;
भवेयुर्निर्दग्धाः स्वपरहितयोर्हन्त ! हतये ।
विदित्वेत्थं विज्ञाः कथमपि न ये रोषकलिताः,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ।।३६।।

सौरभवृत्तिः— हन्त-खेदे । रुषा-क्रोधेन । आविष्टाः-व्याप्ताः । कामम्-पर्याप्तम् । ज्वलदनल - सन्तप्तमनसः-प्रज्वलदग्निसंज्वलितचेतसः । (अत एव) निर्दग्धाः-निःशेषं-दग्धाः । स्वपरहितयोः-निज-परकल्याणयोः । हतये विनाशाय । भवेयुः-सम्पद्येरन् । इत्थम्-अनेन प्रकारेण । विदित्वा-ज्ञात्वा । विज्ञाः-मनीषिणः । ये-बुद्धिविषया गणीश्वराः । कथमपि-केनापि प्रकारेण । रोषकलिताः-क्रोधात्मककषायकलुषितान्तःकरणाः । न-नहि । भवन्तीति शेषः । प्रवरवशिनश्चारुचरितान् तान् आचार्य्यान् स्तुवे ।। ३६ ।।

प्रमाद्यन्तो दर्पात् स्वजनमपि निन्दन्ति नितरा—[1]
मकृत्ये कृत्ये वा[2] विजहति विशेषं गुरुगुणम् ।
न चाहङ्कुर्वन्ति त्रसितमद-मायाः क्वचन ये,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ।।३७।।

सौरभवृत्तिः— प्रमाद्यन्तः-अनवदधतः, प्रमादवशवर्तिन इति यावत् । जना इति शेषः । दर्पात्-अभिमानात् । स्वजनम्-निजपरिवारम्, आत्मीयकुटुम्बमिति

१— निपुणम्-इति पाठा० २— न वाऽकृत्ये-इति पाठा० ।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

यावत् । अपि-खलु । नितराम-अत्यन्तम् । निन्दन्ति-तिरस्कुर्वन्ति । वा-अथवा । कृत्ये-कर्तव्ये । अकृत्ये-अकर्तव्ये । तदुभय-विषये इति यावत् । गुरुगुणम्-गुरवो-महान्तो गुणा हेयोपादेयता-प्रयोजकज्ञाना हि-यस्मात्स गुरुगुणस्तं तथा । विशेषम्-वैलक्षण्यम् । विजहति-त्यजन्ति । कृत्याकृत्य-विवेकरहिता भवन्तीति यावत् । ये-बुद्धिविषयाः सूरीश्वराः । च-पुनः । त्रसितमदमायाः-त्रसिता त्रासं प्रापिता मदस्य मायाशक्तिविशेषो यैस्ते तथाः । सन्त इति शेषः । न-नहि । अहङ्कुर्वन्ति-अभिमन्यन्ते, साहङ्कारा भवन्तीति यावत् । प्रवरवशिनश्चारुचरितान् तान् आचार्य्यान् स्तुवे ।। ३७ ।।

इयं माया साक्षादसम—तमसां सद्म परमं,
महामोहोन्मादान् वरितुमतिवामा प्रणयिनी ।[1]
मनो येषां तस्या विभव-निवहो न व्यथयति,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ।।३८।।

सौरभवृत्तिः— इयम्-प्रत्यक्षमनुभूयमाना । माया-कैतवम् । साक्षात्-प्रत्यक्षम् । असमतमसाम्-अनुपमाज्ञानान्धकाराणाम् । परमम्-प्रकृष्टम् । सद्म-सदनम् । आश्रय इति यावत् । महामोहम्-महानतिशयितश्चासौ मोहो महामोहस्तन्तथा । कामम्-पर्य्याप्तम् । वरितुम्-स्वीकर्तुम् । अतिवामा-अत्यन्तं प्रतिकूला । प्रणयिनी-वल्लभा । तद्रूपेति यावत् । येषाम्-बुद्धिविषयाणामाचार्य्याणाम् । मनः-अन्तःकरणम् (कर्म) तस्याः बुद्धिविषयीभूताया मायायाः । विभवनिवहः-ऐश्वर्यसमूहः । न-नहि । व्यथयति-पीडयति । प्रवरवशिनश्चारुचरितान् तान् आचार्य्यान् स्तुवे ।। ३८ ।।

असौ लोभः क्षोभं दुरित-विषयं त्याजयति वै,
विधत्ते संस्तोभं सुकृतकरणेऽशोभनतमम् ।
मुनीन्द्राणां येषां कथमपि स नान्तः प्रविशति,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ।।३९।।

सौरभवृत्तिः— असौ-बुद्धिविषयः प्रसिद्धो वा । लोभः-लिप्सा । "लोभस्तृष्णा लिप्सा वशः स्पृहा" ३।९४।। **इत्यभिधानचिन्तामणिः** । वै-निश्चयेन । दुरितविषयम्-दुरितं-पापं ।विषयः प्रयोजको यस्य स दुरितविषयस्तं तथा-दुरितजनितमिति यावत् । क्षोभम्-विक्षोभम्, वैमनस्यमिति यावत् । त्याजयति-निवारयति,

---

१— महामोहं कामं जनितुमतिवामा प्रणयिनी । इति पाठान्तरम् ।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

दूरीकरोतीति यावत् । सुकृतकरणे-पुण्याचरणे । अशोभनतमम्-अतिदुष्टम्, महानर्थ-प्रयोजकमिति यावत् । संस्तोभम्-प्रतिरोधकम्, प्रतिबन्धकमिति यावत् । विधत्ते-कुरुते, आपादयतीति यावत् । सः-लोभः । कथमपि-केनापि प्रकारेण, महताऽपि प्रयासेनेति यावत् । येषाम्-बुद्धिविषयाणाम् आचार्य्याणाम् । अन्तः-हृदये । न-नहि । प्रविशति-अवतरति । प्रवरवशिनश्चारुचरितान् तान् आचार्य्यान् स्तुवे ॥ ३९ ॥

सुसूक्ष्मे स्थूले वा त्रिविधकरणैः प्राणिनिवहे,
ऽतिपातं प्राणानां किमपि नहि तन्वन्ति कुहचित् ।
दयाया दारिद्र्यं विदधति विदूरं सपदि ये,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ॥४०॥

सौरभवृत्ति — ये बुद्धिविषया आचार्य्याः । सुसूक्ष्मे-अत्यन्तश्लक्ष्णे, एकेन्द्रिय इति यावत् । "सूक्ष्मं पुनः श्लक्ष्णं च पेलवम्" ॥६॥६३॥ **इत्यभिधानचिन्तामणिः** । वा-अथवा । स्थूले-स्थूरे परिपुष्टाङ्गे, पञ्चेन्द्रियादाविति यावत् । प्राणिनिवहे-जीवकदम्बके । त्रिविधकरणैः-त्रिविधानि त्रिप्रकाराणि च तानि करणानि मनोवाक्कायानि तैस्तथा । कुहचित्-कुत्रापि । किमपि-किञ्चिदपि । प्राणानाम्-असूनाम् । "पुंसि भूम्न्यसवः प्राणाः" **इत्यमरः** । अतिपातम्-अपायम्, अतिक्रमणमिति यावत् । नहि-नैव । तन्वन्ति-कुर्वन्ति । दयायाः-अनुकम्पायाः कृपाया इति यावत् । दारिद्र्यम्-दुर्विधत्वम्, अभावमिति यावत् । सपदि-शीघ्रम् । विदूरम्-अत्यन्तविप्रकृष्टम् । विदधति-कुर्वन्ति । तान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् आचार्य्यान् स्तुवे ॥ ४० ॥

मृषा क्रोधाल्लोभाद् भयत उत हास्यादपि सकृ—
न्न भाषन्ते सन्तो गुणिनि विलसन्तोऽत्र भुवने ।
ऋतं[1] तथ्यं पथ्यं वचनविषयं ये विदधते,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ॥४१॥

सौरभवृत्तिः— क्रोधात्-कोपात् । लोभात् लिप्सातः । भयतः-भीतेः । उत-अथवा । "उत प्रश्नवितर्कयोः । समुच्चये विकल्पे च" **इत्यनेकार्थः** । हास्यात्-हासात् । सकृत्-एकवारम् । अपि-खलु । मृषा-मिथ्या । न-नहि । भाषन्ते-ब्रुवन्ति । अत्र-अस्मिन् । भुवने-लोके । गुणिनि-गुणशालिनि । विलसन्तः-शोभमानाः । सन्तः-सज्जनाः । ये-बुद्धिविषयाः । वचनविषयम्-वाणीसम्बन्धि । ऋतम्-इयर्ति गच्छति ।

१— सदा-इति पाठा० ।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

जनः-प्रत्ययमत्रेति ऋतम् तत्तथा। तथ्यम्-तथा साध्विति तथ्यम्, तत्तथा। पथ्यम्-पथो मार्गादनपेतं पथ्यम्, तत्तथा। विदधते-कुर्वन्ति। प्रवरवशिनश्चारुचरितान् तान् आचार्य्यान् स्तुवे ॥ ४१ ॥

चतुर्भेदैर्भिन्नं प्रथितमिह शास्त्रे प्रशमिना—
मधीशा येऽदत्तं सुलभमपि नेच्छन्ति किमपि।
स्वयं सर्वा सम्पद् भवति यदधीना परवशा,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ॥४२॥

सौरभवृत्तिः— प्रशमिनाम्-प्रशमः प्रकृष्टः शमोऽस्त्येषामिति प्रशमिनो मुनयस्तेषान्तथा। अधीशाः-स्वामिनः। ये-बुद्धिविषयाः आचार्य्यप्रवराः। इह-अस्मिन् लोके इति यावत्। शास्त्रे-जिनागमे। चतुर्भेदैर्भिन्नं-प्रथितम् प्रकारचतुष्टयेन पृथक्तया प्रसिद्धम्। अदत्तम्-अनर्पितम्। सुलभम्-सुखेन लब्धुं योग्यम्। अपि खलु। किमपि-किञ्चित्। वस्त्विति-शेषः। न-नहि। इच्छन्ति-अभिलषन्ति। सर्वा-समस्ता। सम्पत्-कुप्याकुप्याणिमादिसम्पत्तिः। परवशा-परतन्त्रा। सतीति शेषः। स्वयम्-आत्मनैव। यदधीना-यदायत्ता। भवति-जायते। प्रवरवशिनश्चारुचरिता-तान् आचार्य्यान् स्तुवे ॥ ४२ ॥

स्मरं मारं मारं विदधति न ये ऽब्रह्मकलुषं,
तिरश्चीनं हीनं दिविजमथ मानुष्यकमलम्।
परब्रह्मासीनाः पथि परपदे लीन-मनसः,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरिताम् ॥४३॥

सौरभवृत्तिः— परब्रह्मासीनाः-परमुत्कृष्टं च-तद्ब्रह्म-परब्रह्म, तत्रासीनास्तदाहित-चेतसः परमात्मध्यानारूढा इति यावत्। परपदे-परमुत्तमं, पदमास्पदं यस्मिंस्तस्मिंस्तथा। पथि-मार्गे। मोक्षमार्गे इति यावत्। लीनमनसः-लीनं निमग्नं मनोऽन्तःकरणं येषां ते तथा। ये-बुद्धिविषयाः सूरीश्वराः। स्मरम्-मदनम्। मारं मारम्, निहत्य, स्ववशीकृत्येति-यावत्। हीनम्-अपकृष्टम्। अलम्-सुन्दरम्। तिरश्चीनम्-पशुपश्वादिसम्बन्धजनितम्। दिविजम्-देवाङ्गनादिसम्पर्कसमुद्भूतम्। अथ समुच्चये। मानुष्यकम्-मानवसम्बन्धि। कलुषम्-वैरस्यावहम्। अब्रह्म-असंयमम्। न-नहि। विदधति-कुर्वन्ति। प्रवरवशिनश्चारुचरितान् तान् आचार्य्यान् स्तुवे ॥ ४३ ॥

जना मूर्च्छां श्रित्वा परवशतया हन्त हतका,
भजन्ते सन्तापं परमतनुताप प्रतिपलम्।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

इति ज्ञात्वा सुज्ञाः किमपि परिगृह्णन्ति न च ये,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ॥४४॥

सौरभवृत्तिः — हतकाः-लोभादिसमाकृष्टतया-विनष्टाः । जनाः-साधारणमनुजाः । परवशतया-पराधीनतया । मूर्च्छाम्-मोहम् । श्रित्वा-समासेव्य । प्रतिपलम्-प्रतिक्षणम् । परमतनुतापम्-परमो महान् तनुतापः शरीरज्वलनं यस्मिन् स परमतनुतापस्तन्तथा । सन्तापम् संज्वरम् । "सन्तापः संज्वरः समौ"-इत्यमरः । हन्त ! खेदार्थकमव्ययम् । इति पूर्वोक्तम् । ज्ञात्वा-विज्ञाय । ये-बुद्धिविषयाः । सुज्ञाः-सुष्ठु जानन्ति पदार्थतत्त्वमिति तथा । किमपि-अशनीयं पेयं कुप्यमकुप्यं वा किञ्चित् । न च-नहि । परिगृह्णन्ति-आददति । प्रवरवशिनः चारुचरितान् तान् आचार्यान् स्तुवे इति निगदितार्थः ॥ ४४ ॥

गृहीत्वा सद्भावं जिनवरवचोऽधीत्य विधिना,
विशुद्धार्थान् भव्यान् समवगमयन्त्यश्रममहो ।
शुचिज्ञानाचारे नियतमतयो ये श्रुतधनाः,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ॥४५॥

सौरभवृत्तिः — शुचिज्ञानाचारे-विशुद्धज्ञानोपार्जन-व्यवसाये । नियतमतयः-दृढसङ्कल्पाः । श्रुतधनाः-श्रुतानि शास्त्राणि एव धनानि विभवा येषान्ते तथा । ये-बुद्धिविषयाः-आचार्य्याः । सद्भावम्-सन् शोभनश्चासौ भावो भावना सद्भावस्तन्तथा गृहीत्वा-आदाय, चमत्कारिणमाशयं मनसि कृत्येति यावत् । विधिना शास्त्रोक्तप्रकारेण । जिनवरवचः-त्रिपदीसमुद्भूतकल्पसूत्राद्यागमम् । अधीत्य-पठित्वा । अश्रमम्-अनायासं यथा स्यात्तथा । भव्यान्-मोक्षगमनयोग्य-भविकजीवान् । विशुद्धार्थान्-विशुद्धा मोक्षोपयोगित्वेन दोषरहिताश्च तेऽर्था विषया अभिधेयाः, वस्तूनि-प्रयोजनानि वा विशुद्धार्थास्तांस्तथा । "अर्थो विषयार्थनयोर्धनकारणवस्तुषु । अभिधेये च शब्दानां निवृत्तौ च प्रयोजने" इति **मेदिनी** । समवगमयन्ति-अवबोधयन्ति । अहो-आश्चर्ये । प्रवरवशिनश्चारुचरितान् तान् आचार्यान् स्तुवे-इत्युक्तार्थः ॥ ४५ ॥

प्रकारैरष्टाभिर्नियतमिह ये दर्शनचणा,
वपन्ते सद्बोधिं भविकजनकेदार, निचये ।
यतोऽर्हत्साम्राज्यं जयति जगति ख्यातमहिम,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ॥४६॥

सौरभवृत्तिः— दर्शनचणाः-दर्शनेन रत्नत्रितयमध्यमेन ज्ञानेन वा वित्तास्तथा । "तेन वित्ते चञ्चुचणौ" ७।१।१७५॥ इत्यनेन चणः प्रत्ययः । ये-बुद्धि

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

सौरभवृत्तिः— इह-अस्मिन् । अवनितले-भूतले । अवद्यत्यागेन-गर्ह्यपरिवर्जनेन । अनवद्यमिति यावत् । "निकृष्टमणकं गर्ह्यमवद्यं" ६।७८।। इत्यभिधानचिन्तामणिः । अमितजनसमुल्लासि-अपरिमितलोकमानसोल्लासकम् । मितम्-परिमितम् । सत्यम्-तथ्यम् । अपि-खलु । प्रियप्रायम्-बाहुल्येनाभिमतम् । "हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः" इत्युक्त्या प्रायपदमित्यनुसन्धेयम् । वचनम्-वचः । वदन्तः-निगदन्तः । ये-बुद्धिविषयाः । वाचंयमवराः-वाचं यच्छन्ति-नियमयन्तीति वाचंयमाः श्रमणास्ते च ते वराः श्रेष्ठास्तथा । भाषासमितिम्-दधानाः-धारयन्तः । विराजन्त इति शेषः । प्रवरवशिनश्चारुचरितान् तान् आचार्य्यान् स्तुवे इति निगदितार्थः ।। ५१ ।।

द्विचत्वारिंशद्गोचर - चरणदोषैर्विरहितं,
विशुद्धं भिक्षाया अशनमुखमादाय समितौ ।
तृतीयस्यां येषां विलसति मनो निर्जितरसं,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ।।५२।।

सौरभवृत्तिः— द्विचत्वारिंशद्गोचरचरणदोषैः-द्वाचत्वारिंशत्संख्याकगोचरगतदूषणैः । विरहितम्-परित्यक्तम् । (अत एव) विशुद्धम्-सुपवित्रम् । भिक्षाया मुखम् । अन्नजलादिकम् । आदाय-गृहीत्वा । तृतीयस्याम्-तृतीयायाम् । समितौ अशनएषणाख्यायाम् । स्थितानामिति शेषः । येषाम्-बुद्धिविपत्राणामाचार्याणाम् निर्जितरसम् । निर्जितो रसो विस्वादो येन तत्तथा । "रसः स्वादे जले वीर्ये शृङ्गारादौ विषे द्रवे" । इत्यनेकार्थः । मनः-अन्तःकरणम् । विलसति-शोभते । प्रवरवशिनश्चारुचरितान् तान् आचार्यान् स्तुवे ।। ५२ ।।

मनोयोगं दत्त्वा विमलविधिना वीक्ष्य विशदं,
समादानक्षेपावुपकरणमुख्यस्य दधते ।
तुरीयां ये विज्ञाः समितिमिति रक्षन्ति नितरां,
स्तुवे तानाचार्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ।।५३।।

सौरभवृत्तिः— मनोयोगं दत्त्वा-अन्तःकरणेन विचार्य्य । विमलविधिना विमलो-निर्मलश्चासौ विधिः प्रकारो विमलविधिस्तेन तथा । विशदम्-समुज्ज्वलं यथा स्यात्तथा । वीक्ष्य-समवलोक्य । उपकरण-मुख्यस्य-वस्त्रपात्राद्युपकरणस्य समादानक्षेपौ-ग्रहणत्यागौ । दधते-धारयन्ति । वस्त्रादिषु यदेव यावदेव सप्रयोजनं तदेव तावदेव गृह्णन्ति त्यजन्ति पुनरन्यदितिभावः । इति-इत्थम् । ये-बुद्धिविज्ञाः आचार्य्याः । तुरीयाम्-चतुर्थीम् । समितिम् । नितराम्-अत्यन्तम् । रक्षन्ति-

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

यन्ति । प्रवरवशिनश्चारुचरितान् तान् आचार्यान् स्तुवे इति चतुर्थपादान्वयोऽवगतार्थः ।। ५३ ।।

मलं मूत्रं चान्यत् किमपि सविवेकेन मनसा,
विमुञ्चन्ति स्थाने विविध-विधजीवैर्विरहिते ।
अहो ! ये रक्षन्ति प्रकट - लसदुत्सर्गसमितिं,
स्तुवे तानाचार्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ।।५४।।

सौरभवृत्तिः— मलम्-पुरीषम् । मूत्रम्-प्रस्रावम् । च-पुनः । अन्यत्-अपरम् । किमपि-किञ्चिदपि । वस्त्विति शेषः । सविवेकेन-विवेककलितेन । मनसा-चेतसा । विवेकमाधायेति-पदद्वयस्यार्थः । विविधविधजीवैः-अनेकप्रकार-प्राणिभिः । विरहिते-शून्ये । यत्र कोऽपि जीवो न तिष्ठतीति यावत्, तादृशे इति भावः । स्थाने-भूमौ । विमुञ्चन्ति-त्यजन्ति । अहो!-आश्चर्ये । ये-बुद्धिविषया-आचार्याः । प्रकट-लसदुत्सर्गसमितिम्-प्रकटं लसन्ती या उत्सर्गसमितिस्तां तथा, रक्षन्ति-पालयन्ति । प्रवरवशिनश्चारुचरितान् तान् आचार्यान् स्तुवे इत्यवगतार्थः ।। ५४ ।।

मनोमीनो येषां प्रथितविभवो वीत-वृजिनो,
विकल्पानां जाले पतति न पराभूतिभवने ।
मनोगुप्त्या गुप्तो विलसति समाधौ जलनिधौ,
स्तुवे तानाचार्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ।।५५।।

सौरभवृत्तिः— प्रथितविभवः-प्रथितः प्रसिद्धो विभव ऐश्वर्यं यस्य स तथा । "विभवो रै मोक्षैश्वर्ये" इति **मेदिनी** । वीतवृजिनः-वीतं विशेषेणेतं गतं वृजिनं पापं यस्मात्-स तथा । येषाम्-बुद्धिविषयाणामाचार्याणाम् । मनोमीनः-मनोऽन्तःकरणमेव मीनो मत्स्यस्तथा । पराभूतिभवने-पराभूतेः पराभवस्य भवनं सदनम्, समुत्पादकमिति यावत् पराभूतिभवनन्तस्मात्तथा । विकल्पानाम्-सन्दिग्धविचारणानाम् । जाले-आनाये । "जालं तु गवाक्षे क्षारके गणे । दम्मानाययोश्च" **इत्यनेकार्थः** । न-नहि । पतति-निपतति । (किन्तु) मनोगुप्त्या-प्रसिद्धया । समाधौ-जलनिधौ समाधिरूपसमुद्रे गुप्तः तिरोहितः । विलसति-शोभतेतराम् । प्रवरवशिनश्चारुचरितान् तान् आचार्यान् स्तुवे इति व्याख्यातमेव चतुर्थपाद-वाक्यमवसेयम् । रूपकालङ्कारः ।। ५५ ।।

यथायोगं संज्ञामिह हि परिहायाक्षरचणाः,
समालम्बन्ते ये विमलवचनं मौनमथवा ।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

वचोगुप्तिं नित्यं सविधि परिरक्षन्ति सुधियः,
स्तुवे तानाचार्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ॥५६॥

सौरभवृत्तिः— अक्षरचणाः-कुशलाक्षराः। ये-वुद्धिविषया आचार्य्यवराः। यथायोगम्-योगानुसारम्। संज्ञाम्-आहारादिसंज्ञाम्। परिहाय-सन्त्यज्य। इह-लोके। विमलवचनम्-सर्वप्राणिहितं विशुद्धं वचः। अथवा। मौनम्-वाचंयमत्वम्। समालम्बन्ते-समाश्रयन्ति। (अथ च ये) सुधियः-मनीषिणः। नित्यम्-सततम्। सविधि-यथाविधानम्। वचोगुप्तिम्-आर्हतप्रसिद्धाम्। परिरक्षन्ति-सर्वतोभावेन पालयन्ति। प्रवरवशिनश्चारुचरितान् तान् आचार्यान् स्तुवे इति व्याख्यातं द्रष्टव्यं तुरीयपादवाक्यम् ॥ ५६ ॥

प्रसङ्गे क्रूरस्यातुलितमुपसर्गस्य पतिते,
प्रथन्ते ये ध्यानं वपुरथ समुत्सृज्य रुचिरम्।
तनूगुप्तिर्येषामभिमतफला कल्पलतिका,
स्तुवे तानाचार्य्यान् प्रवरवशिनश्चारुचरितान् ॥५७॥

सौरभवृत्तिः— अतुलितम्-तुलनातीतं यथास्यात्तथा। क्रूरस्य-नृशंसस्य तत्सम्बन्धि न इति यावत्। उपसर्गस्य प्रसङ्गे-अवसरे। पतिते-सम्प्राप्ते। सतीति शेषः। ये वुद्धिविषया आचार्य्याः। वपुः समुत्सृज्य-कायोत्सर्गमाधाय। अथ-अनन्तरम्। रुचिरम्-मनोहरम्। ध्यानम्-एकाग्रतया शुक्लादिध्यानम्। प्रथन्ते-विस्तारयन्ति येषाम्-वुद्धिविषयाणामाचार्याणाम्। तनूगुप्तिः-कायगुप्तिः। अभिमतफला-अभिमतमभिलाषास्पदं फलं यस्याः सा तथा। अभिमतफलदायिनीति यावत्। कल्पलतिका कल्पलतारूपा। अस्तीति शेषः। प्रवरवशिनश्चारुचरितान् तान् आचार्य्यान् स्तुवे ॥ ५७ ॥

अथोपाध्याय-गुणमाला

श्रुतस्कन्धौ यत्राध्ययनगणनावाचकगुणा,
नवद्वौ राजन्ते दशशतपदान्यागमवरे।
तदाचाराङ्गं ये समभिदधते बाचन-विधा—
वुपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान् ॥५८॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

सौरभवृत्तिः— यत्र-बुद्धिविषयीभूते आचाराङ्गे । आगमवरे-आगमश्रेष्ठे । श्रुतस्कन्धौ-श्रुतस्कन्धद्वयम् । यत्र पञ्चविंशत्यध्ययनानि, अष्टादशसहस्र-पदानि च सन्ति । अध्ययन-गणना-अध्ययनसंख्या अध्ययनानीति यावत् । वाचकगुणाः-वाचकस्योपाध्यायस्य गुणास्तथा । नवद्भिः-दशशतपदानि-अष्टादश-सहस्रपदानि । आगमवरे-श्रुतश्रेष्ठे, आचाराङ्गे । राजन्ते-शोभन्ते । तद्-आचाराङ्गं । ये-उपाध्यायाः । वाचनविधौ-वाचनाया विधौ-विधाने । समभिदधते-कथयन्ति । तान्-विनयेन, वशितान्-वशङ्गतान् । अभिमतान्-स्वेष्टान् । उपाध्यायान्-वाचकान् । वन्दे-प्रणमामि । ५८ ॥

श्रुतस्कन्धाभ्यां यद् विलसति विशिष्टाध्ययनकै—
स्त्रयोविंशत्याऽपि द्विगुणपदसंख्यैः प्रथमतः ।
द्वितीयाङ्गं तद् वै मधुरवचसा गीतमचिरा—
दुपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान् ॥५९ ॥

सौरभवृत्तिः— यद्-द्वितीयाङ्गं । श्रुतस्कन्धाभ्यां-आगमस्य स्कन्धाभ्यां ! त्रयोविंशत्या विशिष्टाध्ययनकैः । त्रयोविंशतिसंख्यकैर्विशिष्टैरध्ययनैस्तथा । प्रथमतः-पूर्वापेक्षया । द्विगुणितसंख्यैः-षट्त्रिंशत्सहस्रसंख्यकैः । पदैरपि-यथा स्यात् तथा । विलसति-शोभते । तद् द्वितीयाङ्गं-सूत्रकृताङ्गं । यैःवाचकप्रवराः । मधुरवचसा-सुमधुरैर्वचोभिः । गीतम्-श्रावितम्, अस्तीति । अचिरात्-तत्कालं । तान्-प्रोक्त-गुणगणलसितान् । उपाध्यायान्-वाचक-प्रवरान् । विनय-वशितान्-विनयेन वशीभूतान् । अभिमतान्-ममेष्टरूपान् । वन्दे-प्रणमामीति ॥ ५९ ॥

गृहीत्वाऽऽद्यां संख्यां दशपरिमितायां बहुविधाः,
पदार्थाः स्थाप्यन्तेऽध्ययनदशतो यत्र समये ।
नयन्त्येतत् सूत्रं सविधि विशदं ये मुनिवरा—
नुपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान् ।।६०।।

सौरभवृत्तिः— अध्ययनदशतः-दशभ्योऽध्ययनेभ्यः । आद्यां-प्रारम्भिकीं । संख्यां-गणनां । गृहीत्वा-नीत्वा । दशपरिमितायां-दशसंख्यां यावत्, एकतो दशपर्यन्तं । बहुविधाः-अनेके । पदार्थाः-विषयाः । स्थाप्यन्ते-विहिताः सन्तीति । एतत्-स्थानाङ्गं सूत्रं । सविधि-विधिपूर्वकं । विशदं-स्पष्टरीत्या । ये-वाचकाः । मुनिवरान् ग्राहयन्ति-ददति । तान् प्रोक्तगुणलसितान् विनयवशितान् उपाध्यायान् अभिमतान् वन्दे । इति पूर्वंनिगदितमेव ।। ६० ।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

शतं संख्या यावद् विविध-समवायो विजयते,
पदानां स्थानाङ्गाद् द्विगुणिततया यत्र गणितम्।
तदङ्गं तुर्यं यद्वद्वदनकमले भृङ्गतितरा—
मुपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान्॥६१॥

सौरभवृत्तिः— शतं संख्याः-शतमिताः। संख्याः-गणनाः। यावत्। विविध-समवायो-नेकेषां पदार्थानाम्। समवायो-समुदायो। विजयते-जयं प्राप्नोति। तथा। यत्र-यस्मिन्। पदानां संख्या-पद-संख्या। स्थानाङ्गात्-तन्नामक-सूत्रापेक्षया। द्विगुणिततया-द्विगुणिता। चतुश्चत्वारिंशत्सहस्रोत्तरैकलक्षमिता पदानां संख्या विद्यत इति। तच्चतुर्थमङ्गं तुर्यं-चतुर्थम्। 'समवायाङ्ग'। येषां-वाचकवराणां। वदन-कमले-मुखारविन्दे। भृङ्गतितराम्-अतिशयेन भृङ्गमिवाचरति। तानभिमतान् विनयेन वशङ्गतानुपाध्यायान् वन्दे, इति सुलभोऽर्थः॥ ६१॥

अनन्तैरर्थैर्यत् सुनय-गम-भङ्गैः परिगतं,
शतानां चत्वारिंशदतिविमला यत्र घटना।
प्रथन्तेऽङ्गं तद् ये मुनिवर-समूहे भगवती—
मुपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान्॥६२॥

सौरभवृत्तिः— यत्-अङ्गं। अनन्तैः-अगणितैः। अर्थैः पदार्थैः। सुनय-गम-भङ्गैः-नयैः, गमैःभङ्गैश्च, परिगतं-युक्तमस्ति। यत्र-यस्मिन् अङ्गविशेषे। शतानां चत्वारिंशद्-चत्वारिंशत् संख्यक-शतकानां। अतिविमला-परमनिर्मला। घटना-रचना। विद्यते, तद् भगवतीनाम्ना प्रथितमङ्गं। ये-वाचकवराः। मुनिवरसमूहे श्रेष्ठमुनीनां। समूहे-समवाये। प्रथन्ते-विस्तारयन्ति। तान् विनयवशितान् अभिमतान् उपाध्यायान् वन्दे। इत्युक्त एवार्थः॥ ६२॥

श्रुतस्कन्धौ यत्र प्रविलसत आद्ये नवदश,
कथा अन्त्ये धर्म्या अपि दशमितास्तास्ततगुणाः।
अहो! ज्ञाताङ्गं ये विनयिनि विवृण्वन्ति विबुधा,
उपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान्॥६३॥

सौरभवृत्तिः— यत्र-यस्मिन्। द्वौ। श्रुतस्कन्धौ। प्रविलसतः-विराजेते। तत्र आद्ये-प्रथमे। नवदश-एकोनविंशतिमिताः। कथाः सन्ति। द्वितीये चान्त्ये-श्रुतस्कन्धे। दशमिताः-दशसङ्ख्याकाः। कथा राजन्ते। ताः-कथाः। ततगुणाः-विस्तृतगुणमण्डिताः। धर्म्याः धर्मपोषिकाश्च। विद्यन्ते। तत्-'ज्ञाताधर्म-कथाङ्गं,

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

सूत्रमिति यावत् । ये-वाचकप्रवराः । विनयिनि-शिष्ये । शिष्यजनसमक्षं । विवृण्वन्ति-विवरण-पूर्वकं बोधयन्ति । तानभिमतान् विनय-वशितानुपाध्यायान् वन्दे । इति ॥ ६३ ॥

श्रुतस्कन्धे यत्राध्ययनदशके देश-विरति—
श्रितानन्दाद्योपासकदशक-सम्यग्व्रतकथा ।
तदङ्गं षष्ठाग्रं समभिदधते ये मुनिवरा—
नुपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान् ॥६४॥

सौरभवृत्तिः— यत्र-दशाध्ययनवति श्रुतस्कन्धे-आगमे । देश-विरतिश्रितानन्दाद्योपासक-दशक-सम्यग्-व्रतकथा-देशविरति-स्वीकृतानाम् आनन्दादि-दशानामुपासकानाम् । सम्यक्त्वपूर्वकानां व्रतानां कथा वर्तते । तत् सप्तमं । **'उपासकदशाङ्ग'** नामकमङ्गं । ये-वाचक-प्रवराः । मुनिवरान्-मुनिप्रवरान् । सम्यक्तया बोधयन्ति । तान् विनयवशितान् अभिमतानुपाध्यायानहं वन्दे । इति ॥ ६४ ॥

श्रुतस्कन्धो यत्राध्ययन-नवती रम्यरचना,
विभान्त्यष्टौ वर्गा लसति यदनन्तार्थसदनम् ।
दिशन्त्यङ्गं शिष्यांस्तदतिविमलं येऽष्टममहो,
उपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान् ॥६५॥

सौरभवृत्तिः— यत्र-यस्मिन् । एकः । श्रुतस्कन्धो विद्यते । तथा यत्र अध्ययनानां नवतिः-नवतिसंख्यामितान्यध्ययनानि । विद्यन्ते । येषां । रम्य-रचनाः-शोभना रचनाः सन्ति । किञ्च यत्राष्टौ वर्गाः-अष्टसंख्यका वर्गाः । विभान्ति-शोभन्ते । यच्च-सूत्रं । अनन्तार्थसदनं-सुबहूनामर्थानां । सदनं-मन्दिरं । विद्यते । अतिविमलं-परमनिर्मलं । तादृशं । अष्टममङ्गं-**अन्तगडदशाङ्गाभिधमङ्गं** । ये-वाचकप्रवराः । शिष्यान्-मुनीन् । दिशन्ति-उपदिशन्ति, सम्यगवबोधयन्ति । तान् विनयवशितानभिमतानुपाध्यायानहं वन्दे । इति ॥ ६५ ॥

श्रुतस्कन्धे यस्मिन् स्फुरति परमानुत्तरगता—
त्मनां वार्ता वर्गत्रयगुणगुणाङ्काध्ययनजा ।
अहो! ये व्याख्यान्ति प्रवरनवमाङ्गं विनयिना—
मुपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान् ॥६६॥

सौरभवृत्तिः— एकश्रुतस्कन्धरूपिणि यस्मिन्-आगमे । परमानुत्तरगता-

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

त्मनां-श्रेष्ठानुत्तर-विमानं गतानामात्मनां । वार्ता-कथा । वर्गत्रय-गुण-गुणाङ्काध्य-यनजा-त्रिषु वर्गेषु, त्रयस्त्रिंशदध्ययनेषु स्फुरति-कथिताऽस्ति । तत्-प्रवर-नवमाङ्गं-अनुत्तरोपपातिक-नामकमङ्गं । ये-वाचकप्रवराः । विनयिनां-शिष्याणां कृते । व्याख्यान्ति-कथयन्ति । तान् विनयवशितानभिमतानुपाध्यायानहं वन्दे-प्रणमामि इति ॥ ६६ ॥

दशाङ्के प्रश्नव्याकरण इह धर्माध्ययनके,
श्रुतस्कन्धे यस्मिन् दशविध-गभीरार्थ-घटना ।
तदङ्गं तेऽप्यन्तः-करणविषयं लान्ति रभसा—
दुपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान् ॥६७॥

सौरभवृत्तिः— इह-यस्मिन् । दशाङ्के-दशसंख्यके । प्रश्नव्याकरण-नाम्नि । एकश्रुतस्कन्ध-शालिनि । दशविध-गभीरार्थघटना-दशप्रकारकाणां गभीरार्थानां । घटना-योजना । वर्तते इति शेषः । तद्-अङ्गं दशमं प्रश्नव्याकरणाभिधं । ये-वाचकप्रवराः । रभसात्-सत्वरं । सानन्दं-सहर्षं । अन्तःकरणविषयं-हृद्गतं । लान्ति-आनयन्ति, हृदि स्थापयन्ति । तान् विनयवशितानिति पूर्ववत् ॥ ६७ ॥

श्रुतस्कन्धौ यत्राध्ययन-गणना विंशतिरथो,
पदानां सा शून्यत्रय नयन-वह्न्यद्धि-गजभू- ।
विपाकाङ्गं साधूंस्तदपि वदितुं ये व्यवसिता,
उपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान् ॥६८॥

सौरभवृत्तिः— यत्र-यस्मिन् । श्रुतस्कन्धौ-द्वौ श्रुतस्कन्धौ स्त इति । यत्र च अध्ययनगणना-अध्ययन संख्या विंशतिः-विंशतिमिता विद्यते । अथो-अथ च पदानां-पदपाठानां । शून्यत्रयनयन-वह्न्यब्धिगजभू-द्वात्रिंशत् सहस्र-चतुरशीतिलक्षोत्तरैक कोटिमिता-विद्यते । तदेकादशसंख्यकं । विपाकाङ्ग-विपाकसूत्राङ्गं । तदपि-तादृशमपि । साधून्-साधुजनान् । वदितुं-वादितुं । कथयितुं ये-उपाध्यायप्रवराः । व्यवसिता-अनुरक्ताः सन्ति, तान् विनयवशितानभिमतानुपाध्यायान् वन्द इति ॥ ६८ ॥

अहो ! यस्मिन् चम्पा-समवसरणं वर्णितमलं,
यदाद्योङ्गोपाङ्गं जयति जगतामेक-हितदम् ।
तदाख्यान्ति प्रज्ञाविधिवदतुलं ये मुनिजना—
नुपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान् ॥६९॥

सौरभवृत्तिः — अहो-आश्चर्यम् । यस्मिन्-आद्य उपाङ्गे, उववाइयनामके

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

चम्पा-समवरणं-चम्पानगर्यां सम्पन्नं समवसरणं। जगतां-जगज्जनानाम्। एक-हितदम्-सर्वात्मना हितप्रदम्। यद्-वक्ष्यमाणं। आद्योपाङ्गं-प्रथममुपाङ्गं। जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते। तद्-उपाङ्गं। प्रज्ञाविधिवद्-मनीषाविध्यनुसारं। ये-उपाध्याय-प्रवराः। मुनिजनान्-साधुगणान्। अतुलं-समग्रं। आख्यान्ति-कथयन्ति। तान्-उपाध्यायान् विनयवशितान् अभिमतान् वन्द इति ।। ६९ ।।

प्रदेशि-प्रश्नानां प्रतिवचनकं केशि-कथितं,
द्वितीयस्मिन् यस्मिन् त्रिदशवरसूर्याभनटनम्।
उपाङ्गं तद् येषां वदन-सदने नृत्यतितरा—
मुपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान् ।।७०।।

सौरभवृत्तिः— यस्मिन्-यत्र। प्रदेशि-प्रश्नानां-प्रदेशिनामकेन भूपतिना विहितानां प्रश्नानां। केशि-कथितं-केशिगणधरभगवद्भिरुत्तराणि-यस्मिन्-**'राय-पसेणिय'**-नामके। द्वितीयस्मिन्-द्वितीयोपाङ्गे। त्रिदश-वर-सूर्याभ-नटनं-त्रिदशो देवः स एव वरः श्रेष्ठस्तेन सूर्याभदेवाभिधेन विहितं नटनं तत्तथा। वर्णितमस्तीति। तादृशमुपाङ्गं। येषां-उपाध्याय-प्रवराणां। वदन-सदने-मुखमेव सदनं तस्मिन्। नृत्यतितराम्-अतिशयेन विराजते। तदुपाङ्गं येषां मुखे विलसति तान् विनय-वशितानभिमतानुपाध्यायान् वन्दे। इति ।। ७० ।।

यतो जीवाजीवाभिगममुपयन्त्यान्तरधना,
यतो ज्ञप्तिर्नन्दीश्वर-विजय-देवादि-विषया।
तृतीयोपाङ्गं तद् यदुदितमुदेति स्थिरधिया—
मुपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान् ।।७१।।

सौरभवृत्तिः— यतः-यस्मात्। आन्तरधनाः-अभ्यन्तरलक्ष्मीवन्तः। महा-पुरुषा इति यावत्। **जीवाजीवाभिगमं**-इमे जीवा इमे अजीवा इति विषयकम्। अभिगमं-ज्ञानं। उपयन्ति- प्राप्नुवन्ति। यतः-यस्माच्च। नन्दीश्वर-विजयदेवादि-विषया-नन्दीश्वराभिधद्वीपस्य तथा विजयदेवप्रभृतीनां। ज्ञप्तिः-ज्ञानं। लभन्त इति यावत्। तत्-तृतीयमुपाङ्गं **'जीवाभिगम'**नामकं। यदुदितं-येषां मुखात् ज्ञातं सत्। स्थिरधियाम्-सुस्थिरमतिमतां। उदेति-जागर्ति। यदध्ययनेन पूर्वोक्तं ज्ञानमुद्भवति। तान् विनयवशितानभिमतानुपाध्यायान् वन्दे। इति ।। ७१ ।।

यदर्थैरत्यर्थं विशदमथ षट्त्रिंशदतुलैः,
पदैः पूर्णं तूर्णं व्रजति वृजिनं यच्छ्रवणतः।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

उपाङ्गं तत्तूर्यं विलसति यदध्यापितमहो,
उपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान् ॥७२॥

सौरभवृत्तिः— यत्-तुरीयमुपाङ्गं 'पन्नवणा' ऽभिधया प्रसिद्धं । अत्यर्थ-विशदं अतिशयपूर्णैरर्थैर्-विस्तृतं विद्यते । अथ-किञ्च । षट्त्रिंशद्-षड्उत्तर-त्रिशत्-संख्यकैः । पदैः-पदविशेषैः । पूर्णं-परिपूर्णमस्ति । यच्छ्रवणतः-यस्य श्रवणात् । तूर्णं-शीघ्रं । वृजिनं-पापम् । व्रजति-गच्छति, नश्यतीति । तत्-पन्नवणा-नामकं । तुर्यं चतुर्थम् । उपाङ्गं । यद्-अध्यापितं-येषां पाठनात् । विलसति-शोभते । अहो ! आश्चर्यम् । तान् अभिमतान् विनयवशितान् उपाध्यायान् वन्दे ॥ ७२ ॥

विनिर्णीता यत्र द्युमणि-मुखजामण्डलततिः,
स्वरूपं ताराणां स्तुत-नगशर-प्राभृतवरे ।
तुरीयाङ्गोपाङ्गं तदभिरमते यन्मुखविधा—
वुपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान् ॥७३॥

सौरभवृत्तिः— यत्र-यस्मिन् । उपाङ्गे । द्युमणि-मुखजामण्डलततिः-सूर्यादि-मण्डलानां विस्तारः । विनिर्णीता-विशिष्य निश्चिता, वर्णिता विद्यते । तथा, स्तुत-नग-शर-प्राभृतवरे-स्तुते-सप्तपञ्चाशत्तमे प्राभृत-श्रेष्ठे । ताराणां-तारकाणां । स्व-रूपं-यथोक्तं रूपं । वर्णितमस्तीति । तत् । तुरीयाङ्गोपाङ्गं-चतुर्थाङ्गस्य उपाङ्ग-सूर्यप्रज्ञप्ति-नामकं । यन्मुखविधौ-येषां वदनचन्द्रे । अभिरमते-शोभते । तान्-तादृश-गुणोपेतान् । अभिमतान् विनयवशितान् उपाध्यायान् वन्दे ॥ ७३ ॥

चतुःषष्ट्या शक्रैर्विहितमतिभक्त्या जिनजनु—
र्महो यस्मिन् जम्बू-प्रथम-पर-प्रज्ञप्ति-समये ।
अदः षष्ठोपाङ्गं विकसति यदीयास्य-किरणा—
दुपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान् ॥७४॥

सौरभवृत्तिः— यस्मिन्-षष्ठ उपाङ्गे । जम्बू-प्रथम-पर-प्रज्ञप्तिसमये-जम्बूप्रज्ञप्ति-नाम्न्युपाङ्गे, चतुःषष्टया-चतुःषष्टिवृत्तैः । शक्रैः इन्द्रैः । अतिभक्त्या-अतिशयभक्तिभावेन । जिनजनुर्मह-जिनेश्वराणां । जनुषः-जन्मनः । महः-उत्सवः-श्रीजिनेश्वर-जन्म-महोत्सवः । विहितम्-कृतम् वर्णितमस्ति । अदः-तत् । षष्ठो-पाङ्गं-जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति-नामकमङ्ग । यदीयास्य-किरणात्-येषां वदनरूप-सूर्यस्य-किरणात् । विकसति-विकासं प्राप्नोति । तान् अभिमतान् विनयवशितान् उपा-ध्यायान् वन्दे ॥ ७४ ॥

नभः कृष्णां यस्मिन् प्रतिपदमुपादाय घटना,
कृता घट्यादीनां गणनविशदा प्राभृतभृति।
विधु-प्रज्ञप्तिस्तद् यदुदितमुपाङ्गं समुदिया—
दुपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान् ।।७५।।

सौरभवृत्तिः— यस्मिन् पञ्चाशत् प्राभृतयुक्ते सप्तम उपाङ्गे। नभः-कृष्णां-श्रावण-कृष्णपक्षमयीं। प्रतिपद-प्रति तिथि। उपादाय-आदाय। घट्यादीनां-घटी-प्रभृतीनां। गणन-विशदा-गणनया विस्तृता। कृता-विहिता। तद्-विधु-प्रज्ञप्तिः चन्द्रप्रज्ञप्तिः। उपाङ्गं। यत्-यं, उदितम्-उक्तम्। समुदियात्-उदयं प्राप्नुयात्। तान् अभिमतान् विनयवशितान् उपाध्यायान् वन्दे ।। ७५ ।।

कलिं कृत्वा कालादिक-दश कुमारा निरयकं,
गतास्तद् वृत्तान्तं स्फुटमचकथद् यत्र भगवान्।
मुखाद् येषां तद् वै श्रवणमधिगत्यामृतमिता,
उपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान् ।।७६।।

सौरभवृत्तिः— यत्र-यस्मिन्। उपाङ्गे। भगवान्-परमात्मा। कालादिक-दश कुमाराः-'काल' प्रभृतयो दश संख्यकाः कुमाराः। कलिं-कलहं। कृत्वा-विधाय। निरयकं-नरकं। गताः-याताः। तद्-वृत्तान्तं-तेषां वृत्तजातं। स्फुटं-यथातथम्। अचकथत्-कथितवान्। येषां-उपाध्यायप्रवराणां। मुखात्-आननात्। श्रवणम्-आकर्णनं। अधिगत्य-प्राप्य। अमृतम्-अमरत्वं। इताः-श्रितवन्तः। तान् अभिमतान् विनयवशितान् उपाध्यायान् वन्दे ।। ७६ ।।

श्रिता यस्मिन् पद्मादिक-दशकुमाराः सुकृतिनः,
श्रयित्वा चारित्रं सुरपदमिता आयतिहिताः।
अदोऽष्टाग्रोपाङ्गं मुनिषु नियतं ये व्यपदिश—
न्त्युपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान् ।।७७।।

सौरभवृत्तिः— यस्मिन्-नवम उपाङ्गे। पद्मादिक-दशसंख्यककुमाराः-पद्म-प्रभृतयो दशसंख्यकाः कुमाराः। सुकृतिनः-पुण्यशालिनः। आयतिहिताः-सौभाग्याय समुचिताः। चारित्रं-चारित्र्यं। श्रयित्वा-नीत्वा। सुरपदं-स्वर्गलोकम्। इताः-प्राप्ताः। इति कथा यत्र-श्रुता-वर्णिता। अदः-तत्। अष्टाग्रोपाङ्गं-नवम-मुपाङ्गं। ये-उपाध्यायप्रवराः। मुनिषु-साधुजनेषु, स्वविनेयेषु। नियतं-सर्वदा। व्युपदिशन्ति-विशिष्टरूपेण। उपदिशन्ति। तान् अभिमतान् विनयवशितान् उपाध्यायान् वन्दे ।। ७७ ।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

शशी सूर्यः शुक्रो बहुतनयिका पूर्णशिवकः,
शिवो दत्तो माणिर्बहुबल-बलोऽणाहिय इति ।
दशानां वृत्तं येऽभिदधति दिशोपाङ्ग-समया—
दुपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान् ॥७८॥

सौरभवृत्तिः— शशी-चन्द्रमाः । सूर्यः-रविः । शुक्रः-भार्गवः । बहुतनयिका-बहुपुत्रिकादेवी । पूर्ण-शिवकः-पूर्णभद्रः । शिवः-तन्नामा । दत्तः-दत्ताख्यः माणिः-माणिभद्रः । बहुबलबलः-अतिबलशाली बलः । अणाहियः-एतन्नामकः । इति-दशानां-दशसङ्ख्यकानां । दिशोपाङ्गं-समयात्-दशमोपाङ्ग-शास्त्रात् । ये-उपाध्यायप्रवराः । वृत्तान्तं-कथानकं । अभिदधति-कथयन्ति । तान् अभिमतान् विनयवशितान् उपाध्यायान् वन्दे ॥ ७८ ॥

दश श्री-ह्री-लक्ष्मी-धृतिवरसुरा-कीर्तिमतिकाः,
रसेला-गन्धा यत्समयसमिता गीतचरिताः ।
उपाङ्गं तद् येऽङ्गं श्रुतमुनिवरेभ्यः प्रवितर—
न्त्युपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान् ॥७९॥

सौरभवृत्तिः— श्री-ह्री-लक्ष्मी-धृति-सुरा-कीर्ति-मति-रसा-इलागन्धा-प्रकृतयो दश सङ्ख्यकाः । यत्समय-समिताः-यत्र-एकादशे पुष्पचूलिका-नामक उपाङ्गे गीत-चरिताः-गीतं चरितं यासां ताः । सन्ति । तद् अङ्गं-प्रधानम् । उपाङ्गं-एकादशसङ्ख्यकं । ये-उपाध्यायप्रवराः । श्रुतमुनिवरेभ्यः-श्रुतज्ञेभ्यो मुनिश्रेष्ठेभ्यः वितरन्ति-ददति, श्रावयन्ति । तान् अभिमतान् विनयवशितान् उपाध्यायान् वन्दे ॥ ७९ ॥

सतां द्वारावत्यां निषधमुखवर्य-प्रशमिनां,
कुमाराणां यत्रोल्लसति चरितं साधु भणितम् ।
उपाङ्गं तच्चान्त्यं प्रसरति यदीयास्य-निलया—
दुपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान् ॥८०॥

सौरभवृत्तिः— द्वारावत्यां-द्वारावतीनामिकायां नगर्यां । सतां-जातानां निषधमुख-वर्यप्रशमिनां-निषधेश्वर-प्रभृतीनां सज्जनकुमाराणां । यत्र-द्वादश उपाङ्गे साधु-उत्तमं । भणितं-निगदितं । चरितं-कथानकं । उल्लसति-सोल्लासं विराजते तच्च-तद् द्वादशं च । अन्त्यं-अन्तिमम् । उपाङ्गं, यदीयास्य-निलयात्-येषामुपाध्यायप्रवराणां मुख-मन्दिरात् । प्रसरति-प्रसारं प्राप्नोति । तान् अभिमतान् विनयवशितान् उपाध्यायान् वन्दे ॥ ८० ॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

मतिज्ञानं सम्यक् श्रुतमवधि यस्मिन्नधिकृतं,
मनःपर्यायं केवलमपि यथारूपमुदितम् ।
अदो नन्दीसूत्रं चरणकरणा ये प्रगुणय—
न्त्युपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान् ।।८१।।

सौरभवृत्तिः— यस्मिन्-नन्दीसूत्र-नामके सूत्रे । मतिज्ञानं । श्रुतं-श्रुतज्ञानम् । अवधि-अवधिज्ञानं । सम्यक्-समीचीनतया । अधिकृतं-अधिकाररूपेण । तथा, मनःपर्यायं-मनः पर्ययज्ञानं । केवलं-केवलज्ञानम् । अपि यथारूपं-यथार्थरूपेण । उदितम्-वर्णितम् अस्तीति । अदः-तत् । नन्दीसूत्रं-एतन्नामकं सूत्रम् । चरण-करणाः-चरणसप्तति-करणसप्ततिधारकाः । ये-उपाध्याय-प्रवराः । प्रगुणयन्ति-प्रकृष्टतया गणयन्ति । तान् अभिमतान् विनयवशितान् उपाध्यायान् वन्दे ।। ८१ ।।

चतुर्धा निक्षेपो जिनवर-विशिष्टागम-समा—
गमे हेतुर्गीतः प्रथितविभवो यत्र विशदम् ।
अनूयोगद्वारं वदति गहनं येऽवगमय—
न्त्युपाध्यायान् वन्दे विनयवशितांस्तानभिमतान् ।।८२।।

सौरभवृत्तिः— यत्र-यस्मिन्, **अनुयोगद्वार**-सूत्रे । जिनवर-विशिष्टागम-समागमे-जिनेश्वर-भगवद्भाषितानां विशिष्टागमानां सम्प्राप्तये । चतुर्धा-चतुर्विधः । निक्षेपः-नामस्थापना-द्रव्य-भावरूप-चतुः प्रकारको निक्षेपः । प्रथितविभवः-विस्तृत-वैभवः । विशदम्-यथा स्यात् तथा । हेतुः-कारणं विद्यत इति । गीतः-वर्णितः । ईदृशं तत् गहनं-गभीरं । अनुयोगद्वार-सूत्रं-एतन्नाम्ना सुप्रसिद्धं । ये-उपाध्याय-प्रवराः । अवगमयन्ति-सम्यगवबोधयन्ति । तान् अभिमतान् विनयवशितान् उपाध्यायान् वन्दे ।। ८२ ।।

अथ-साधुगुणमाला

मनो - वाक्कायैर्यैऽसुहनन-विरामात्मकमहा—
व्रतं चाद्यं धृत्वाऽभयमिह सुरक्षन्ति निपुणम् ।
प्रवर्तन्ते नित्यं निजनियतसाध्ये यतनया,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ही विजयते ।।८३।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

सौरभवृत्तिः— मनोवाक्कायैः-मनसा, वचसा कर्मणा च तैः। ये-मुनिवराः। अनुहनन-विरामात्मक-महाव्रतं-प्राणिहिंसा-विरति-महाव्रतं। च-तथा। आद्यं-पूर्वतनं। धृत्वा-धारयित्वा। अभयं-निर्भयं। इह-अत्र। निपुणम्-यथा स्यात् तथा। सुरक्षन्ति-रक्षां कुर्वन्ति। नित्यं-सदैव। यतनया-प्रयत्नपूर्वकं। निजनियतसाध्ये-स्वीयनिश्चते साध्यकर्मणि। प्रवर्तन्ते-संलग्ना भवन्ति। एतेषां मुनीनाममलं चरितं ही विजयते। इति ॥ ८३ ॥

निमग्नाः कल्याणे महति विरमन्ति प्रथमतो,
मृषावादादात्माऽऽहित-हितविलासा अवहिताः।
लभन्ते सौहित्यं मनसि किल ये सत्यवचसा,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ही विजयते ॥८४॥

सौरभवृत्तिः— ये-मुनिवराः। महति-सुदीर्घे। कल्याणे-श्रेयसि। निमग्नाः-संलग्नाः। सन्तः। मृषावादात्-मिथ्यावादात्। विरमन्ति-विरामं प्राप्नुवन्ति तथा। आत्माऽऽहित-हितविलासाः-आत्मनि आहिताः स्थापिताः। हितविलासाः हितकारिणो विलासाः यैस्ते-तादृशाः। अवहिताः-सावधानाः। सत्यवचसा-सत्येन वास्तविकेन, वचसा-वचनेन, मनसि-हृदये। किल-निश्चयेन। सौहित्यं-सद्हितं लभन्ते-प्राप्नुवन्ति एतेषां। मुनीनां-तेषां मुनिवराणां। अमलं-निर्मलं। चारितं-चरित्रं। ही-वस्तुतः। विजयते-विजयं प्राप्नोति ॥ ८४ ॥

अमोघा मोघा वा भवतु निजयाच्ञा तदपि ये,
न दत्तं नेहन्ते कथमपि परस्वं तृणमपि।
ततः सर्वा सम्पत् सपदि वृणुते यान् स्वयमहो,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ही विजयते ॥८५॥

सौरभवृत्तिः— ये-मुनिवराः। निजयाच्ञा-स्वकीया याचना। अमोघा-सफला। मोघा-निष्फला। वा। भवतु-सम्पद्यताम्। तदपि-तथापि, तृणमपि-अतितुच्छमपि। वस्तु। परस्वं-परद्रव्यं। न दत्तं। कथमपि-केनापि प्रकारेण। नेहन्ते न वाञ्छन्ति। ततः-तस्मात् कारणात्। सर्वा-सकला। सम्पत्-सम्पदा, वस्तुजातं स्वयमेव-स्वेच्छयैव। सपदि-शीघ्रं। अहो!-आश्चर्यम्। यान्-मुनीन् वृणुते-प्राप्नोति। एतेषां-ईदृशाणां। मुनीनां-मुनिवराणां। अमलं-निर्मलं शुद्धं। चरितं-चारित्रं। ही-निश्चयेन। विजयते-विजयं प्राप्नोति ॥ ८५ ॥

रतिर्येषां शास्त्रे सततमिह जागर्ति तरला,
रतिप्राया वामा मनसि न खलु स्वप्न-विषया।

श्रयित्वा मौनं ये निधुवनमघानां विदधते,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ही विजयते ॥८६॥

सौरभवृत्तिः— येषां-मुनिवराणां । शास्त्रे-आगमे । रतिः-प्रीतिः । इह-संसारे । तरला-भक्तिमती । जागर्ति-वर्तते । किञ्च । रतिप्राया-अत्यन्तं रमणीया रतिरूपा । वामा-नारी । खलु-निश्चयेन । स्वप्नविषया-स्वप्नस्य विषयतां गताऽपि । न-नैव । ये-मुनयः । मौनं-मूकरूपतां । श्रयित्वा-श्रित्वा, अघानां-पापानां, प्रायश्चित्तानाम् । निधुवनं-समापनं । विदधते-कुर्वन्ति । एतेषां मुनीनाममलं चरितं ही विजयते ।। ८६ ॥

सदा सक्ता ग्रन्थे तदपि भुवि निर्ग्रन्थवृषभा,
निधौ बाह्ये चान्तश्चतुरधिदशाङ्के परिग्रहे।
न ये सम्मूर्च्छन्ति प्रहतममता गीतसमता,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ही विजयते ॥८७॥

सौरभवृत्तिः— ये-मुनिवराः । सदा-निरन्तरं । ग्रन्थे-शास्त्रे । सक्ताः-संलग्नाः । तदपि-तथापि । भुवि-भूमौ । निर्ग्रन्थवृषभाः-श्रेष्ठाः निर्ग्रन्थसाधवः । गण्यन्त इति शेषः । तथा, निधौ-नवप्रकारके । बाह्ये-बहिर्भूते । तथा । अन्तश्चतुरधिदशाङ्के-चतुर्दशमितान्तःस्थे । परिग्रहे-संग्रहे । येषां प्रहतममता-प्रहता-प्रणष्टा, ममता-ममत्वं अस्तीति शेषः । एवं विधाः । ये-मुनयः । न-नैव । सम्मूर्च्छन्ति-मोहं न प्राप्नुवन्ति । तथा ते गीत-समताः-समत्वेन प्रख्याताः सन्ति । एतेषां मुनीनाममलं चरितं ही विजयते ॥ ८७ ॥

समासक्तं येषां हृदयमिह जीवावनविधौ,
ततः सन्त्यक्तं यैरशनमथ पानं निशिकृतम्।
निपीतं पीयूषं समयजनितं यैरविरतं,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ही विजयते ॥८८॥

सौरभवृत्तिः— येषां-मुनिवराणां । हृदयं-स्वान्तं । इह-अस्मिन् संसारे । जीवावनविधौ-जीवानां प्राणिनां, अवनस्य-रक्षणस्य यो विधिर्विधानं, तस्मिन् प्राणिरक्षण-कर्मणि । समासक्तं-संलग्नं । ततः-तस्मात् । निशिकृतम्-रात्रौ क्रियमाणं । अशनं-भोजनं । अथ-किञ्च । पानं-जलपानं । सन्त्यक्तम्-परित्यक्तम् । यैः-मुनिवरैः । अविरतं-निरन्तरं । समयजनितं-शास्त्रैरुत्पन्नं । पीयूषं-अमृतं । निपीतं-पानं विहितम् । एतेषां-ईदृशानां । तेषां । मुनीनां-साधूनां । अमलं-निर्मलं । चरितं-चारित्र्यं । ही-अहो । विजयते-सर्वोत्कर्षेण जयं प्राप्नोति ॥ ८८ ॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

गृहादेर्निर्माणे खनन-कृषिमुख्ये कृतिविधौ,
क्षितेर्हिंसां मत्वा निदधति मनो नाल्पमपि ये।
सदा पृथ्वीकायं व्ययत इह रक्षन्ति रुचिरं,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ही विजयते ॥८९॥

सौरभवृत्तिः— ये-साधुप्रवराः। गृहादेः-गृहादि-भवनानां। निर्माणे। खनन-कृषि-मुख्ये-खाते कृषिकर्मणां च मुख्ये। कृतिविधौ-निर्माणविधौ। क्षितेः-पृथिव्याः। हिंसां-हननं। मत्वा-मानयित्वा। गृहादिनिर्माणकार्ये-कृष्यादिमुख्यकार्ये च पृथ्वीकायस्य हिंसां ज्ञात्वा इह-अत्र लोके। सदा-निरन्तरं। व्ययतः-विनाशात्। पृथ्वीकायं। रुचिरं-समुचितरूपेण यथा स्यात् तथा। रक्षन्ति-रक्षां कुर्वन्ति। एतेषां मुनीनां निर्मलं चरितं ही विजयत इति पूर्वमुक्तमेव ॥ ८९ ॥

अपां पाने सक्ता अपि न खलु पानं विदधते,
सचित्तानां तासां न पुनरभिषिञ्चन्ति करणम्।
सदा संलीनत्वे वरतपसि ये प्रावृषि रता,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ही विजयते ॥९०॥

सौरभवृत्तिः— ये-मुनिप्रवराः। अपां-अप्कायानां। पाने-रक्षणे। सक्ताः-लग्नाः। अपि। सचित्तानां-चित्तसहितानां। तेषां-जलानां। पानं-पानकर्म। न खलु-कथमपि नैव। विदधते-कुर्वन्ति। पुनः-तथा च। करणं शरीरं। न अभिषिञ्चन्ति-नैवाभिषेकं कुर्वन्ति। ये-मुनिगणाः। सदा-सदैव। प्रावृषि-वर्षर्तौ। संलीनत्वे-संलीनता-नाम्नि। वरतपसि-श्रेष्ठायां तपस्यायां। रताः-संलग्नाः। भवन्तीति। एतेषां मुनीनाममलं चरितं ही विजयत इति पूर्ववदेव ॥ ९० ॥

प्रकाशं तन्वाना अपि गृहमणेर्ज्वालनमहो,
न कुर्वन्ति ज्योतिः शिशिरसहिता जाड्यरहिताः।
स्फुटं तेजस्कायं व्रतिन इह ये पान्ति परितो,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ही विजयते ॥९१॥

सौरभवृत्तिः— ये-साधुगणाः। प्रकाशं-ज्योतिः। तन्वानाः-विस्तारयन्तः। अपि। गृहमणेः-दीपस्य। ज्वालनं-प्रज्वालनं, अहो-आश्चर्यं। न कुर्वन्ति-नैव विदधति। जाड्यरहिताः-ज्ञानयुक्ताः। ये-मुनयः। शिशिर-सहिताः-शैत्ययुक्ता अपि। ज्योतिः-अग्निं। न ज्वालयन्ति। शीतनिवारणायाग्निं प्रज्वाल्य न प्रतपन्तीति। किञ्च ये-मुनिप्रवराः। व्रतिन-व्रतधराः। स्फुटं-स्पष्टरूपेण। परितः-सर्वतः। तेजस्कायं। पान्ति-रक्षन्ति। एतेषां मुनीनां निर्मलं चरितं ही विजयत इति पूर्ववदेव ॥ ९१ ॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

मनो जेतुं कामं पवनजयिनः पावनपथा,
न ये फूत्कुर्वन्ति व्यजन-भजनाच्चापि विरताः।
यथा वायोः कायं नयति कुशलं यद्गतिरलं,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ह्री विजयते ।।९२।।

सौरभवृत्तिः— ये साधुगणाः। पावनपथाः-पवित्रमार्गाः। पवनजयिनः-वायु-विजयिनः। भूत्वा। कामं-यथोचितं। मनो-मानसं। जेतुं-विजेतुं। न फूत्कुर्वन्ति-फूत्कारं-वह्निज्वालनाय मुखाद् वायुक्षेपणं न विदधति। तथा। व्यजन-भजनात्-वायोरुपलब्धये, ग्रीष्मवारणार्थं व्यजनस्य भजनात्-सेवनादपि। विरताः-निवृत्ताः, वसन्ति। यथा-मन्ये, तादृशप्रकारेण। यद्गतिः-येषां प्रवृत्तिः। वायोः-पवनस्य। कार्यं-शरीरं। अलं-पर्याप्ततया। कुशलं-सुखं। नयति-प्रापयति। एतेषां मुनीनाममलं चरितं ह्री विजयत इत्युक्तमेव ।। ९२ ।।

फलं पुष्पं मूलं त्वचमथ च काष्ठं किसलयं,
सचित्तं बीजं ये न पुनरुपयुञ्जन्ति किमपि।
तदेवं त्रायन्ते परिहरितकायं परिचितं,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ह्री विजयते ।।९३।।

सौरभवृत्तिः— ये-मुनिवराः। सचित्तं। फलं। पुष्पं-कुसुमं। मूलं-कन्दरूपं। त्वचं-त्वग्भागं। काष्ठं। किसलयं-पत्रं। बीजं। पुनः-वा। किमपि-किञ्चिदपि। न-नहि। उपयुञ्जन्ति-उपयोगं कुर्वन्ति। तदेवं-तदनेन प्रकारेण स्वार्थमुपयोग-राहित्येन। परिचितं-ज्ञातं। परिहरितकायं-वनस्पतिकायं। सर्वप्रकारेण। त्रायन्ते-रक्षन्ति। एतेषां मुनीनाममलं चरितं ह्री विजयत इत्युक्तचरमेव ।। ९३ ।।

जलूका-हीनाङ्गी-शलभमुखजीवायनविधौ,
यतन्ते ये नित्यं करणकरणानामपि हितम्।
त्रसं कायं त्रासादवहिततयाऽवन्ति विधिव—
न्मुनीनामेतेषां चरितममलं ह्री विजयते ।।९४।।

सौरभवृत्तिः— जलूका-जलौकाः। हीनाङ्गी-पिपीलिका-ज्योतिरिङ्गण-प्रभृतिजीवानाम्। अवनविधौ-रक्षणकर्म्मणि। करण-करणानाम्-पञ्चेन्द्रियाणाम्। अपि। हितम्-सुखं। विधातुं। नित्यं-सदैव। ये-मुनिप्रवराः। यतन्ते-प्रयत्नं कुर्वन्ति। ये च। त्रसं कायं-त्रसकायं, तादृशजीवजातं। [illegible]-कष्टात्। अवहित-

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

तया-सावधान-भावेन । विधिवद्-यथा स्यात् तथा । अवन्ति-रक्षन्ति । एतेषां मुनीनाममलं चरितं ह्री विजयते । तदिति पूर्ववदेव ।। ९४ ।।

स्वयं दक्ष-द्व्यक्षाः क्वचिदपि न चैकान्तनयना ,
अनेकान्तेक्षेण व्यवहृतिपथे यान्ति निपुणम् ।
सदेकाक्षाणां ये व्यथनविधितोऽत्यन्त-विरता ,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ह्री विजयते ।।९५।।

सौरभवृत्तिः— ये-साधुगणाः । स्वयं-आत्मना । दक्ष-द्व्यक्षाः-कुशल-द्विनयनाः । क्वचिदपि-कुत्रापि, कस्मिन्नपि विषये । एकान्तनयना-एकान्तदृष्टिवन्तः । च । न-नैव । सन्तः । अनेकान्तेक्षेण-अनेकान्तनेत्रेण दृष्टया वा । व्यवहृतिपथे-व्यवहारमार्गे । निपुणं-योग्यरूपेण । यान्ति-प्रचलन्ति । अथ च । सदा-नित्यं । एकेक्षाणां-एकेन्द्रियाणां । व्यथनविधितः-पीडाविधाने । अत्यन्तविरताः-अत्यन्तं सर्वरूपेण । विरताः-निवृत्ताश्च । वसन्ति । एतेषां मुनीनाममलं चरितं ह्री विजयत इत्युक्तचरमेव ।। ९५ ।।

जलालोका शुक्तिः कृमिरपि घुणः कम्बुरथ वै ,
हिरण्या दुर्नामा द्विकरणतया सन्ति विदिताः ।
अमीषां रक्षार्थं त्रिविधकरणैर्ये व्यवसिता ,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ह्री विजयते ।।९६।।

सौरभवृत्तिः— ये-मुनिगणाः । जलालोका-जलौकाः । शुक्तिः-जले वर्तमानः शुक्तिरूपो जीवः । कृमिः-कीटः । घुणः-काष्ठभक्षकः कीटविशेषः । अपि-अथ । कम्बुः । शङ्खजीवः-कपर्दिका । वै-निश्चयेन । हिरण्यादुर्नामा-कपर्दकः दीर्घकोशा च । एते सर्वे । द्विकरणतया-द्वीन्द्रियतया । विदिताः-प्रसिद्धाः । सन्ति-विद्यन्ते । अमीषां-उक्तानामेतेषाम् । रक्षार्थं-रक्षणाय । त्रिविधकरणैः-मनो-वाक्-कायेन्द्रियैः । व्यवसिताः-समुद्यताः । एतेषां मुनीनाममलं चरितं ह्री विजयत इत्यागूरितोऽर्थः ।। ९६ ।।

महाभीरू रिक्षा किटिभ उपदीकाऽग्निरजको ,
घृतेली यूकाऽमी भुवि परिचितास्त्रीन्द्रियतया ।
सुषुप्तावप्येषां न च विदधते येऽभिहननं ,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ह्री विजयते ।।९७।।

सौरभवृत्तिः— ये-मुनिप्रवराः । महाभीरुः-गोपालिका । रिक्षा-लिक्षा ।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

किटिभः-मत्कुणः । उपदीका-वम्री । अग्निरजकः-इन्द्रगोपः । घृतेली-पिङ्गकपिशा । यूका-षट् पदी । अमी-एते । त्रीन्द्रियजीवाः-त्रीन्द्रियतया-करणत्रयतया । परिचिताः-विदिताः सन्तीति शेषः । भुवि-भूमण्डले । एषां-उक्तानामेतेषां जीवानां । सुषुप्तावपि-स्वापावस्थायामपि । ये मुनयोः । अभिहननं-स्वेच्छया विघातं । च । न विदधते-नैव कुर्वन्ति । एतेषां मुनीनाममलं चरितं ही विजयते । स्पष्टमेव ॥ ९७ ॥

अली लालास्रावः शलभ-सरघे सा शतपदी,
निमेषद्युद् दंशी द्रुणक-वरटे वर्षकरिका ।
अमून् ये रक्षन्ति स्वमिव चतुरक्षान् स्वचतुरा;
मुनीनामेतेषाममलचरितं ही विजयते ॥९८॥

सौरभवृत्तिः -- ये-मुनिगणाः । अली-भ्रमरः । लालास्रावः-लूता । शलभः-पतङ्गः । सरधा-मधुमक्षिका । शतपदी-कर्णखर्जूरिका । निमेषद्युत्-ज्योतिरिङ्गणः । दंशी-अल्पिकावनमक्षिका । द्रुणकः-वृश्चिकः । वरटा-गन्धोली । वर्षकरिका-झिल्लिका । अमून्-एतान् । चतुरक्षान्-चतुरिन्द्रियजीवान् । स्वचतुराः-स्व-निपुणाः । स्वमिव-स्वात्मानमिव । रक्षन्ति-रक्षां कुर्वन्ति । एतेषां मुनीनाममलं चरितं ही विजयत इत्युक्तमेव ॥ ९८ ॥

न चित्तेन घ्नन्ति क्षणमपि तिरश्चो निरयजान्,
मनुष्यान् गीर्वाणान् जगति चतुरः पञ्चकरणान् ।
वचः कायाभ्यां किं पुनरकलुषा ये न परुषा,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ही विजयते ॥९९॥

सौरभवृत्तिः— ये-मुनिवराः । तिरश्चः-पक्षिणः । निरयजान्-नारकीयान् । मनुष्यान्-मानवान् । गीर्वाणान्-देवान् । चतुरः-उक्तानेतान् चतुःसंख्यकान् । पञ्चकरणान्-पञ्चेन्द्रियान् । चित्तेन-हृदयेन । अकलुषाः-कालुष्यरहिताः । न परुषाः-न च कठोराः । क्षणमपि मनसाऽपि । वचः कायाभ्यां-वाचा शरीरेण च । जगति-संसारे न । घ्नन्ति-न हिंसन्ति । किं पुनः-अन्येषां हननविषयाणां विषये किमु वक्तव्यं ? एतेषां-ईदृशानां सर्वथा हिंसा-विरतानां मुनीनाममलं चरितं ही विजयत इत्युक्तोऽर्थः ॥ ९९ ॥

जिते लोभे सर्वं विजितमजितं मोहकटकं;
गते मोहे मुक्तिः करतलगता स्यादिति विदुः ।
न लोभं निर्ग्रन्था हृदि निदधते लेशमपि ये,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ही विजयते ॥१००॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

सौरभवृत्तिः— लोभे-लुब्धकभावे । जिते-विजिते सति । अजितं-अजेयं । मोहकटकं-मुग्धत्वसैन्यं । विजितं-जितं । भवतीति । किञ्च मोहे-मुग्धभावे । गते-निवृत्ते सति । मुक्तिः-मोक्षः । करतलगता-स्वाधीनतां प्राप्ता स्यादिति-भवेदिति । विदुः-आचार्याः प्रजगुः । अतो । निर्ग्रन्थाः-साधवः । हृदि-स्वात्मनि । लेशमपि-स्वल्पमपि । लोभं-लुब्धभावं । ये न विदधते मुनयो न जनयन्ति । एतेषां मुनीनां निर्मलं चारित्र्यं विस्मापकं सद् विजयं प्राप्नोति ।। १०० ।।

क्षमा शस्त्रं येषां भवति न च तेषां भयमहो,
कुतोऽपि भ्राजन्ते दिवि सदा ते सुयशसा ।
क्षमामेवं मत्वा दधति सततं ये गतरुषो,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ह्री विजयते ।।१०१।।

सौरभवृत्तिः— येषां-सत्पुरुषाणां तपस्विनाम् । क्षमा-क्षान्तिः । शस्त्रं-आयुधं । भवति अहो !-अनाश्चर्यम् । तेषां च-तद्विधानां च । कुतोऽपीति । ते-तादृशाः महापुरुषाः सदा-सदैव । दिवि-स्वर्गे । सुयशसा-उत्तमया कीर्त्या । भ्राजन्ते-शोभन्ते । एवं-ईदृग्गुणशालिनीं । क्षमां-क्षान्तिं । मत्वा-ज्ञात्वा । ये-मुनिवराः । गतरुषः-वीतकोपाः । सततं-निरन्तरं । क्षमां । दधति-धारयन्ति । एतेषां मुनीनाममलं चरितं ह्री विजयत इत्युक्तमेव ।। १०१ ।।

अनुप्रेक्षा धर्म्या द्व्यधिकदशसङ्ख्याः पुनरपि,
व्रतानां स्थैर्यार्थं करणनयनाः शास्त्रविदिताः ।
चतस्रो मैत्र्याद्या जहति न च यच्चित्तसदनं,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ह्री विजयते ।।१०२।।

सौरभवृत्तिः— द्व्यधिकदशसङ्ख्याः-द्वादशप्रकारिकाः । धर्म्याः-धर्मादनपेताः । अनुप्रेक्षाः-अनित्याशरणप्रभृतयो द्वादशभावनाः । पुनरपि-पुनश्च । व्रतानां-पञ्च महाव्रतानां । स्थैर्यार्थं-स्थिरत्वाय । शास्त्रविदिताः-आगमेषु प्रसिद्धाः । करणनयनाः-पञ्चविंशतिसंख्यका भावनाः । तथा च । मैत्र्याद्याः-मैत्रीप्रभृतयः । चतस्रः-चतुःसंख्यका भावनाः । यच्चित्तसदनं-येषां साधूनां हृदयभवनं । न जहति-न त्यजन्ति । सर्वा उपर्युक्ता भावना नैव विजहति । एतेषां मुनीनां विमलं चरितं ह्री विजयत इति ।। १०२ ।।

अमत्रं वस्त्रं वा सदुपकरण यैश्च वसतिः,
प्रमृज्यन्ते दृष्टया मृदुलतरया केसरिकया ।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

प्रमाद्यन्ते नो ये नियत-प्रतिलेखादिक-विधौ ;
मुनीनामेतेषां चरितममलं ही विजयते ।।१०३।।

सौरभवृत्तिः— यैः-मुनिवरैः । अमत्रं-पात्रम् । वस्त्रं-वासः । सदुपकरणं-उत्तमसाधनैः । वा । वसतिः-उपाश्रय-भूमिः । दृष्टया-अवलोकनेन । मृदुलतरया-अति कोमलया । केसरिकया-पुञ्जणिकया । प्रमृज्यन्ते-प्रकृष्टतया मार्ज्यन्ते । ये च-ये मुनिवराश्च । नियत-प्रतिलेखनादिक-विधौ-नियमित-प्रतिलेखनादि-विधाने । नो-नैव । प्रमाद्यन्ते-प्रमादं कुर्वन्ति । एतेषां मुनीनाममलं चरितं ही विजयते । इति ।। १०३ ।।

लभन्ते नो सिद्धिं कथमपि विना संयममहो ;
जना भ्रामं भ्रामं विरहित - विरामं भववने ।
ततः सेवन्ते ये पदमनुपदं संयमयुजो ,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ही विजयते ।।१०४।।

सौरभवृत्तिः— अहो !-आश्चर्यम् । जनाः-मनुजाः । भववने-संसार-रूपिणि अरण्ये । विरहित-विरामं-विश्रामविरहितं । भ्रामं भ्रामं=भूयो भूयो भ्रमणं कुर्वाणाः । संयमं-संयमेन । विना-राहित्येन । कथमपि-केनापि प्रकारेण । सिद्धिं-ईप्सिते कर्म्मणि सिद्धिं । नो-नैव । लभन्ते-प्राप्नुवन्ति । ततः-तदनन्तरं । ये साधु-गणाः । अनुपदं-शीघ्रं । संयमयुजः-संयमशालिनो योगिनः । पदं स्थानं । सेवन्ते-आश्रयन्ते । एतेषां मुनीनाममलं चरितं ही विजयते । इति ।। १०४ ।।

पिता-पुत्री स्यातां यदि सहचरौ किन्न दुरितं ,
ददाते दान्तानामपि लघु परिज्ञाय मनसः ।
मनोजं हृत्वा ये इति चलमनोगोपनपरा ;
मुनीनामेतेषां चरितममलं ही विजयते ।।१०५।।

सौरभवृत्तिः— पिता-पुत्रौ-जनक-तनयौ । मनः कामौ, यदि-र्यहि । सहचरौ-सहचारिणौ । स्यातां-भवेतां, तदा । दान्तानामपि-दान्तेभ्यः शान्तेभ्योपि किं दुरितं-किं पापं । न ददाते-न वितरतः । इति-एवं । लघु-द्रुतं । परिज्ञाय-पूर्णरूपेण ज्ञात्वा । मनसः-हृदयात् । मनोजं-कामं । हृत्वा-दूरे कृत्वा । ये-मुनयः । चलमनोगोपनपराः-चञ्चलस्य मनसो रक्षणाय तत्पराः सन्ति । एतेषां मुनीनां विमलं चरितं ही विजयत इति ।। १०५ ।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

वचो नो गुप्तं चेज्जगति कमनर्थं न जनयेत् ?
सुगुप्तं श्रेयांसि प्रवितरति तस्माद् वशिवरैः।
वचोगुप्त्या वाचं यमवचनमाधारि ननु यै—
र्मुनीनामेतेषां चरितममलं ह्री विजयते ॥१०६॥

सौरभवृत्तिः— जगति-संसारे। वचः-वचनं। गुप्तं-रक्षितं, संयतं। नो चेत्-न भवेत् चेत्। कम्-किं रूपं। अनर्थं-अनिष्टं। न जनयेत्-नोत्पादयेत्। तदेव वचः। सुगुप्तं-सुसंयतं सत्। श्रेयांसि-भद्राणि। प्रवितरति-पूर्णतया ददाति। तस्मात्-तत्कारणात्। यैः वशिवरैः-संयतेन्द्रियैः। वचोगुप्त्या-वचनानां सत्प्रयोगेण। यम-वचनम्-संयतवचनं। वाचंयम इति नाम। ननु-निश्चयेन। आधारि-आसमन्ताद् अधारि-धारितम्। अस्तीति। एतेषां मुनीनाममलं चरितं ह्री विजयते जयवद्वर्तत इति ॥ १०६ ॥

शरीरं स्वाधीनं नियतमशरीराय घटते,
तथाऽनन्तानन्तं जनयति शरीराणि जगति।
ततो गुप्त्या कामं सततमिह रक्षन्ति किल ये,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ह्री विजयते ॥१०७॥

सौरभवृत्तिः— स्वाधीनं-स्वायत्तं। शरीरं-वपुः। वस्तुतः। अशरीराय-मोक्षाय। घटते-भवति। तथा-किञ्च। अस्वाधीनं शरीरं। जगति-लोके। अनन्तानन्तं-अपरिमितानि। शरीराणि-वपूंषि। जनयति-उत्पादयति। ततः-तस्मात्। ये-मुनिगणाः। किल-निश्चयेन। सततं-निरन्तरं। कायं-शरीरं। गुप्त्या-कायगुप्त्या। रक्षन्ति-रक्षणं कुर्वन्ति। एतेषां मुनीनाममलं चरितं ह्री विजयते ॥ १०७ ॥

बुभुक्षाद्यान् द्वाविंशतिमपि सहन्ते परिषहान्,
प्रमृष्टा ते नूनं परमपदसौख्यं विदधते।
ततो धैर्यं धृत्वा परिषहबलं यैर्जितमलं,
मुनीनातेषां चरितममलं ह्री विजयते ॥१०८॥

सौरभवृत्तिः— बुभुक्षाद्यान्-क्षुधाप्रभृतीन्। द्वाविंशतिं-द्वयुत्तर-विंशतिसंख्याकान्। परिषहान्-तन्नामकव्रतविशेषान्। सहन्ते-क्षमन्ते। ते-परिषहाः। प्रमृष्टाः-सुपालिताः। नूनं-निश्चितरूपेण। परमपदसौख्यं-मोक्षसुखं। विदधते-करोति, ददाति। ततः-तस्मात्। यैः-मुनिगणैः। धैर्यं-शान्ति। धृत्वा-धारयित्वा। अलं-यथा-स्यात् तथा। पूर्णरूपेण। परिषहबलं-परिषह-सैन्यं। जितम्-विजितम्। एतेषां मुनीनां विमलं चरितं ह्री विजयते ॥ १०८ ॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S.　　Jun Gun Aaradhak Trust

शुभध्याने मित्रा अमृतपद - पुण्योद्धुर-धुरं—
धरा धर्माध्वाना न जिगमिषवो दुर्गतपथम्।
न मार्गाच्चाल्यन्ते प्रसरदुपसर्गैः किमपि ये,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ह्री विजयते ॥१०९॥

सौरभवृत्तिः— शुभध्याने-शुक्लध्याने । ये-मुनयः । मित्राः-मित्ररूपाः । अमृतपुण्योद्धुरधुरन्धराः-मोक्षपदस्य पवित्रस्य । उद्धुरंधुरन्धराः-समुन्नत-धुराधारकाः । धर्माध्वानाः-धर्मस्य मार्गे गन्तारः । दुर्गतपथम्-दुर्गतमार्गं । न-नैव । जिगमिषवः-गन्तुमिच्छुकाः । ये-मुनिवराः । प्रसरदुपसर्गैः-प्रसरद्भिरुपसर्गैर्विघ्नैः मार्गात्-पथः । किमपि-मनागपि । न चाल्यन्ते-विचलिताः न क्रियन्ते । एतेषां मुनीनाममलं चरितं ह्री विजयते ॥ १०९ ॥

॥ समाप्ता सव्याख्या पञ्चपरमेष्ठि-गुणमाला ॥

—★—

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

वचो नो गुप्तं चेज्जगति कमनर्थं न जनयेत् ?
सुगुप्तं श्रेयांसि प्रवितरति तस्माद् वशिवरैः।
वचोगुप्त्या वाचं यमवचनमाधारि ननु यै—
र्मुनीनामेतेषां चरितममलं ही विजयते ॥१०६॥

सौरभवृत्तिः— जगति-संसारे। वचः-वचनं। गुप्तं-रक्षितं, संयतं। नो चेत्-न भवेत् चेत्। कम्-किं रूपं। अनर्थं-अनिष्टं। न जनयेत्-नोत्पादयेत्। तदेव वचः। सुगुप्तं-सुसंयतं सत्। श्रेयांसि-भद्राणि। प्रवितरति-पूर्णतया ददाति। तस्मात्-तत्कारणात्। यैः वशिवरैः-संयतेन्द्रियैः। वचोगुप्त्या-वचनानां सत्प्रयोगेण। यम-वचनम्-संयतवचनं। वाचंयम इति नाम। ननु-निश्चयेन। आधारि-आसमन्ताद् अधारि-धारितम्। अस्तीति। एतेषां मुनीनाममलं चरितं ही विजयते जयवद्वर्तते इति॥ १०६॥

शरीरं स्वाधीनं नियतमशरीराय घटते,
तथाऽनन्तानन्तं जनयति शरीराणि जगति।
ततो गुप्त्या कामं सततमिह रक्षन्ति किल ये,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ही विजयते ॥१०७॥

सौरभवृत्तिः— स्वाधीनं-स्वायत्तं। शरीरं-वपुः। वस्तुतः। अशरीराय-मोक्षाय। घटते-भवति। तथा-किञ्च। अस्वाधीनं शरीरं। जगति-लोके। अनन्तानन्तं-अपरिमितानि। शरीराणि-वपूंषि। जनयति-उत्पादयति। ततः-तस्मात्। ये-मुनिगणाः। किल-निश्चयेन। सततं-निरन्तरं। कायं-शरीरं। गुप्त्या-कायगुप्त्या। रक्षन्ति-रक्षणं कुर्वन्ति। एतेषां मुनीनाममलं चरितं ही विजयते॥ १०७॥

बुभुक्षाद्यान् द्वाविंशतिमपि सहन्ते परिषहान्,
प्रमृष्टा ते नूनं परमपदसौख्यं विदधते।
ततो धैर्यं धृत्वा परिषहबलं यैर्जितमलं,
मुनीनातेषां चरितममलं ही विजयते ॥१०८॥

सौरभवृत्तिः— बुभुक्षाद्यान्-क्षुधाप्रभृतीन्। द्वाविंशतिं-द्व्युत्तर-विंशतिसंख्याकान्। परिषहान्-तन्नामकव्रतविशेषान्। सहन्ते-क्षमन्ते। ते-परिवहाः। प्रमृष्टाः-सुपालिताः। नूनं-निश्चितरूपेण। परमपदसौख्यं-मोक्षसुखं। विदधते-करोति, ददाति। ततः-तस्मात्। यैः-मुनिगणैः। धैर्यं-शान्ति। धृत्वा-धारयित्वा। अलं-यथा-स्यात् तथा। पूर्णरूपेण। परिषहबलं-परिषह-सैन्यं। जितम्-विजितम्। एतेषां मुनीनां विमलं चरितं ही विजयते॥ १०८॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

शुभध्याने मित्रा अमृतपद-पुण्योद्धुर-धुरं—
धरा धर्माध्वाना न जिगमिषवो दुर्गतपथम्।
न मार्गाच्चाल्यन्ते प्रसरदुपसर्गैः किमपि ये,
मुनीनामेतेषां चरितममलं ही विजयते ॥१०९॥

सौरभवृत्तिः— शुभध्याने-शुक्लध्याने । ये-मुनयः । मित्राः-मित्ररूपाः । अमृतपुण्योद्धुरधुरन्धराः-मोक्षपदस्य पवित्रस्य । उद्धुरंधुरन्धराः-समुन्नत-धुराधारकाः । धर्माध्वानाः-धर्मस्य मार्गे गन्तारः । दुर्गतपथम्-दुर्गतमार्गं । न-नैव । जिगमिषवः-गन्तुमिच्छुकाः । ये-मुनिवराः । प्रसरदुपसर्गैः-प्रसरद्भिरुपसर्गैर्विघ्नैः मार्गात्-पथः । किमपि-मनागपि । न चाल्यन्ते-विचलिताः न क्रियन्ते । एतेषां मुनीनाममलं चरितं ही विजयते ॥ १०९ ॥

॥ समाप्ता सव्याख्या पञ्चपरमेष्ठि-गुणमाला ॥

—★—

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

75928

卐 પંચ પરમેષ્ઠી ગુણમાળા 卐

[રચયિતા :- વિજય ધર્મધુરંધર સૂરી મહારાજ]

(અનુષ્ટુપ)

અર્થ :- ૐ હ્રીં અર્હીં એ પ્રકારના પરમતેજ સ્વરૂપ પરમ મંત્રનું ધ્યાન ધરીને ભક્તિ પૂર્વક પંચ પરમેષ્ઠીના ગુણ સમુહની અમે સ્તુતિ કરીએ છીએ. ॥૧॥

અરિહંત ગુણમાળા — શિખરીણી —

અર્થ ;- આ અશોક વૃક્ષ સ્પષ્ટ લાલ વર્ણનો હોવા છતાં પણ અર્થાત સરાગ રક્ત હોવા છતા પણ વિતરાગ પરમાત્માને અનુસરેલો છે. પ્રમાણથી તીર્થંકર પરમાત્માના શરીરથી બાર ગણો ઉંચો છે. પવનથી ચાલતા પાંદડાઓને બહાને જાણે ગીત ન ગાતો હોય એવો લાગે છે. તે આ અશોક વૃક્ષ લોકોના શોકને હરણ કરે છે. ॥૨॥

અર્થ ;- કમળ વગેરે જેમાં મુખ્ય એવા ગોઠણ પ્રમાણ ઉંચો ભમરાના ઝણકાર ભરી જેનાં ડીંટડાં નીચે છે. એવી પુષ્પની વૃષ્ટિ ચાર ગાઉ પ્રમાણ સમવસરણમાં દેવતાઓ કરે છે. તે પરાજય પામેલા કામદેવે તિર્થંકર પરમાત્માની સમીપે પુષ્પ રૂપ પોતાના શસ્ત્રોનો ત્યાગ કર્યો ન હોય એમ જણાવે છે. ॥૩॥

અર્થ :- તીર્થંકર પરમાત્માના મુખથી પ્રકટેલ દિવ્ય અને ભવ્ય ધ્વનિ તે અમૃતનું સરસ હૃદય છે. મિષ્ટ મધુરતાની મધુરતા છે. સ્વરોનો પોતાનો રસ છે. શ્રુતિની સંપત્તિ છે. પીડાનો નાશ કરનાર છે. આનંદનો એવો ધ્વનિ જયવંત વર્તે છે. ॥૪॥

અર્થ :- દેવતાઓના કરકમળમાં આનંદથી નૃત્ય કરતી તીર્થંકર પરમાત્માના મુખરૂપી ચંદ્રને જોઇને આનંદના હાસ્યના અંકુરમાં જાણે કે પ્રગટયા ન હોય તેવી ચકોર પક્ષીનાં જોડલા જેવી અજોડ ઉજ્જ્વળતાને ધારણ કરતી આ ચામરની હાર સતત ગતિવાળી કોને સુખ આપતી નથી! અર્થાત સુખ આપે જ છે. ॥૫॥

અર્થ :- મહામોહ (અર્થાંરાગ) અને દ્રોહ-દ્વેષ વિગેરે શત્રુ રૂપી હાથીઓના વિનાશને માટે રચેલું સારા વર્ણનું સોનાનું બનાવેલું ઉતમ કિરણવાળા માણસોથી ચારેબાજુ જડેલું ચરણથી ચમકતાં પાદપીઠવાળું પુણ્યને ઉત્પન કરનારું દેવતાઓએ નમસ્કાર કરાયેલું તીર્થંકરોના બેસવાના સ્થાનભુત અદ્દભુત આ સિંહાસન વિલસે છે. ॥૬॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

અર્થ :– હે અરિહંત ! હજારો સૂર્યની એકઠી પ્રભા કરતા પણ વિશેષ તમારી નિર્મળ પ્રભા વિલસે છે. જગતમાં લોકો નિસ્તેજ ને અથવા અત્યંત તેજસ્વીને જોતા નથી એમ વિચારીને આ દેવતાઓ એ રચેલું ભામંડળ શોભે છે. ॥૭॥

અર્થ ;– અનાદિ અજ્ઞાનથી સમસ્ત જગત ઉંઘે છે. તેના અંધકારને દૂર કરવા માટે શ્રી જીનેશ્વર રૂપી સૂર્ય ઉદય પામે છે. કાનને મધુર આકાશને ભરી દેતો આગળ આગળ જોરથી પ્રસરતો દુન્દુભીનો અવાજ તેમનું આગમન જણાવનારો થાય છે. ॥૮॥

અર્થ :– ધર્મના બળે ત્રણલોકનું સામ્રાજ્ય પ્રાપ્ત કરીને દેવતા અને મનુષ્યોથી પૂજાયેલા તીર્થંકર ધર્મવર ચાતુરંત્ત ચક્રવર્તી બન્યા તેથી તેમનો પુણ્ય સમૃધ્ધિના અતિશયપણાથી ઉંચે રહેલા સારા મોતીથી જડેલા આ ઉજ્જવળ ત્રણે છત્રો તમારું રક્ષણ કરો. ॥૯॥

અર્થ :– લોકમાં પદાર્થો છે. ગુણસમુદાય અને પર્યાયનો સમુહ અનંત છે. તે સર્વનું જ્ઞાન મતિજ્ઞાન વિગેરે ચાર જ્ઞાનથી થઈ શકતુ નથી. તે સર્વ જાણવા માટે અંતિમ નિર્મળ એક કેવળ જ્ઞાન જ સમર્થ છે. જીનેશ્વર પરમાત્મા અવિનાશીપણે તે સુંદર અતિશયવાળું જ્ઞાન ઉદય પામ્યું છે. ॥૧૦॥

અર્થ :– આ જગતમાં કયાં ઇતર દેવોના ચારિત્ર વગરના વચનો સારી રીતે કલ્યાણને હણતા નથી. જેમ રોગો શરીરનો નાશ કરે છે તેમ. હે અર્હંત ! તમારા વચનો પ્રશમરસ ભરપુર છે. સર્વભવ્યાત્માઓને કલ્યાણ કરનારા છે. જેમ મેઘ અન્નને ઉત્પન્ન કરે તેમ. ॥૧૧॥

અર્થ :– હે ભગવાન ઇન્દ્રોએ આપની જે પ્રકારે પૂજા કરી છે એવા પ્રકારે ત્રણ જગતમાં બીજા કોઈની પણ ક્ષણવાર પણ પૂજા કરી હોય એવું દેખ્યું કે સાંભળ્યું નથી. અહો ! આપનું સૌભાગ્ય પણ એવું આશ્ચર્યજનક છે કે આપના પૂજનથી પણ વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થાય છે. આવાં પુજાતિશયથી આપની મહત્તા વિસ્તાર પામે છે. ॥૧૨॥

અર્થ :– સંસાર રૂપી જેલખાનાનું સ્વરૂપ અશુભ ઘરમાં પળે પળે જરા આધિ–વ્યાધિ છેવટે મરણ રૂપ દુઃખોને પ્રાપ્ત થાય છે. તે પ્રાપ્તિના મૂળ કારણ રૂપ પાપ સમુહને (અર્થાત કર્મને) આપને મૂળમાંથી ઉખેડી નાંખ્યું છે. માટે અપાયાપગમાતિશય યુક્ત એવા આપ ભવ્ય રૂપ ભવભય રૂપ અપાયથી રક્ષણ કરો. ॥૧૩॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

સિદ્ધ ગુણમાળા :-

અર્થ :- નિગોદ અવસ્થામાં અનંતમાં ભાગનું અસમાન જ્ઞાન પ્રગટ હતું. પછીથી વ્યવહારમાં અનુક્રમે અવ્યક્ત વ્યક્ત જ્ઞાન પ્રગટ ઉદય પામ્યુ. પણ સંસાર રૂપી ઘરમાં તે કોઈપણ રીતે પુર્ણ થયું નહિ. અજોડ અને અનંત સંપુર્ણ જ્ઞાન સિદ્ધ પરમાત્માઓને સારી રીતે સિધ્ધ થયેલું શોભે છે. ॥૧૪॥

અર્થ :- આ વિશ્વમાં આત્માઓને પણ સામાન્ય સિવાય વિશેષ જ્ઞાન થતું નથી. પરંતુ સિધ્ધાત્માઓને વિશે તો પ્રથમ વિશેષ જ્ઞાન અને પછી સામાન્ય થાય છે. ત્રણે લોકનું ત્રણે કાળમાં સિધ્ધ પરમાત્માના અખંડ કેવળ દર્શન ગુણરૂપી નિર્મળ દર્પણમાં સારી રીતે પ્રતિબિમ્બ પડે છે. ॥૧૫॥

અર્થ :- કોઈક વનેચર ભિલ્લનગરમાં ગયો ત્યાં રાજાના ઘરમાં રહીને ભોગો ભોગવી વળી પાછો શીઘ્ર વનમાં ગયો તે ત્યાં વનમાં બીજા વનેચરોને નગરના સુખને સમજાવે પણ સમજાવી શકતો નથી. તે જ પ્રમાણે સિધ્ધ પરમાત્માનું મોક્ષ સુખ સંસારી જીવો સમજી શકાય તેવુ નથી. ॥૧૬॥

અર્થ :- સંસારમાં કોઈપણ વખત મહા મોહના ઉદ્રેકથી સ્વાધીન સુખ અનુભવ્યું જ નથી. જે કાંઈક સુખ છે તે કર્મથી ભરેલું અને ક્ષણ વિનશ્વર છે. પરંતુ મોક્ષમાં મોહના સદંતર નાશથી ઉત્પન્ન થયેલો પરમ આનંદનો નિસ્યંદન ચારે બાજુથી જોડાઈને પુષ્ટપણે આત્માને રમાડે છે. અર્થાત મોક્ષમાં આત્મા પરમાનંદમાં રમે છે. ॥૧૭॥

અર્થ :- નારક ગતિમાં તિર્યંચ ગતિમાં મનુષ્ય ગતિમાં અને દેવ ગતિમાં એમ ચારગતિ રૂપ સંસારમાં સતત નિર્ગમ કર્યું પણ આયુષ્ય કર્મના સદંતર નાશથી સિધ્ધપરમાત્માઓની સ્થિતિ અક્ષય છે. તે અક્ષય સ્થિતિ રૂપ અજોડ અને અનુપમ મનોહર અને દુઃખના નાશ કરનાર ગુણને હું વંદુ છું. ॥૧૮॥

અર્થ :- જેમ ચિતારો વિવિધ પ્રકારના ચિત્રોને રચે છે. તેમ નામ કર્મ આત્માને સંસાર રૂપી નગરમાં વિચિત્ર રીતે નચવે છે. સંસારથી મુક્ત થયેલા આત્માનું અનુપમઃ રૂપ વગરનું સ્વરૂપ પવિત્ર અને હિતકર કોને આશ્ચર્ય ઉત્પન્ન કરતું નથી અર્થાત અદ્‌ભૂત છે. ॥૧૯॥

અર્થ :- સંસારમાં સારકુળમાં જન્મની પ્રાપ્તિ થાય છે. તેથી આત્માને મદને અને હર્ષને ઉત્પન્ન કરનાર ગૌરવ આવી જાય છે. તથા દુષ્કાળમાં જન્મની

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

પ્રાપ્તિ થાય છે. ત્યારે અકુલીનતા લાઘવને ઉત્પન્ન કરે છે. આ સર્વગોત્ર કર્મના પ્રભાવે છે. તે ગોત્રકર્મ જ સિધ્ધ પરમાત્માને નહીં હોવાને કારણે તેનામાં અગુરૂ લઘુ પણ ગુણ પ્રકટે છે. એવા ગુરુ લઘુ ભાવથી સહિત શુધ્ધ તેજને સર્વથા નમસ્કાર હો. ॥૨૦॥

અર્થ :– સંસાર રૂપી ઘરમાં રહેલા આત્માઓને મનપસંદ નથી ધન નથી લાભ નથી ભોગ નથી નથી ઉપભોગ કે નથી વીર્ય મોક્ષ રૂપી મંદિરમાં વસનાર આત્માઓ દાનઅંતરાયને સારી રીતે હણી નાંખે છે. અને તેથી જ્ઞાન વિગેરે પાંચેય અનંત પ્રાપ્ત કરે છે. ॥૨૧॥

આચાર્ય ગુણમાળા :–

અર્થ –: જેમણે હાથીનું કષ્ટ જાણ્યુ છે. એવા વશેન્દ્રીય આચાર્ય સ્વપ્ન માં પણ કમળ સમાન કોમળ સ્ત્રીનાં સ્પર્શને ઈચ્છતા નથી પ્રાવરણ રહિત અને આત્માના હિતપાળ શીત અને ઉષ્ણને સહન કરે છે. શ્રણી વશી અને સુંદર ચારિત્ર વાળા એવા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરું છું ॥૨૨॥

અર્થ :– જેઓ રસનાના લોભથી નવા નવા રસને આસ્વાદે છે. તેઓ માછલીની માફક હંમેશા. વિરસ દુઃખને પ્રાપ્ત કરે છે. એ પ્રમાણે જાણીને એવા આચાર્યો કોઈ પણ પ્રકારે જીભની લોલુપતાને ધારણ કરતા નથી તે પ્રમટ વશી સુંદર ચારિત્ર વાળા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરૂં છું. ॥૨૩॥

અર્થ :– કમળમાં ભ્રમર નાસીકાથી હણાયેલા શરીરના પણ ત્યાગ કરે છે. ગંધમાં આસકત થયેલા મનુષ્યો મહા દુર્ગંધી ધારણ કરે છે. તેથી સ્વસ્થ મનવાળાં મુનીવરો ગંધના વિષયમાં આશકત થતા નથી. એવા પ્રવરથી સુંદર ચારિત્રવાળા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરૂં છું. ॥૨૪॥

અર્થ :– જે આચાર્ય ભગવંતોએ પોતાનું વિશુદ્ધ સ્વરૂપ જાણ્યું છે. તેઓ ક્ષણવાર પણ પારકા રૂપમાં અર્થાત્ પુદ્ગલના રૂપમાં ખરેખર વિલાસ કરતા અને તેથી તેઓ પતંગિયાની માફક રૂપમાં પડીને મૃત્યુ–અપમૃત્યુને પ્રાપ્ત કરતા નથી. એવા પ્રવરવશી સુંદર ચારિત્ર વાળા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરૂં છું. ॥૨૫॥

અર્થ :– જેમના કર્ણવિવરમાં જીનેશ્વરના વચનામૃત રૂપી હિતકાર રસ પ્રવેશ્યો છે તે આચાર્યો સારી રીતે ગવાયેલા સંગીતથી કોઈપણ સ્થળે હરણની માફક

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

ખરેખર કુગતિને પ્રાપ્ત કરતા નથી તેવા આચાર્યોની હુ સ્તુતિ કરૂં છું ॥૨૬॥

અર્થ :– જ્યાં સ્ત્રીઓને વાસ નથી, જ્યાં તિર્યંચોને વાસ નથી અને જ્યાં નપુંસકોને વાસ નથી અને જ્યાં ધ્યાનનો વિસ્તાર વધે એવો વિશુદ્ધ સ્વાધ્યાય થઇ શકે છે. એવી વસતિમાં જેઓ વસે છે. તે આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરૂં છું. ॥૨૭॥

અર્થ :– આ સ્ત્રી બાળા છે. આ ઉછળતી ચાલવાળી અને ઉછળતી મતીવાળી યુવતી છે. આ મુગ્ધા પુષ્ટ સ્તનરૂપી કળશવાળી છે. એ પ્રમાણેની સ્ત્રીઓની કથા જેઓ બ્રહ્મચર્યમાં આસક્ત હોવાથી કદી કરતા નથી. એવા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરૂં છું ॥૨૮॥

અર્થ :– જે સ્થાન ઉપર ક્ષણવાર પણ સ્ત્રી બેઠેલી હોય છે. તે સ્થાન પર જેમણે કામને જીત્યો છે. એવા મુનીવરો કોઇપણ રીતે સ્થિતિ કરતા નથી. પરમાણુના સંચારથી રાગ ઉદય પામે છે. એ વાત તેઓ સારી રીતે જાણે છે. એવા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરૂં છું. ॥૨૯॥

અર્થ :– મનુષ્યો સ્ત્રીઓના વિકાર ઉત્પાદક અવયવોને જોઇને અંતરમાં મોહ ધારણ કરતા નિષ્ફળ કામને ઉત્પન્ન કરીને મનમાં સંતાપ પ્રાપ્ત કરે છે. નિષ્ફળ પ્રવૃતિ જેણે દૂર કરેલી છે. એવા આચાર્યોએ પ્રમાણે સંતાપના કારણે જ સેવતા નથી. તે આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરું છું. ॥૩૦॥

અર્થ :– જ્યાં દંપતિનો નિવાસ હોય ત્યાં ભીંતને આંતરે કામના આવેશવાળી તેઓની વાત અનાયાસ સાંભળવામાં આવે એ જાણીને સંયમ માર્ગમાં વિચરનારા આચાર્યો એવી વસતીમાં વસવાનું છોડી દે છે. તે આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરૂં છું. ॥૩૧॥

અર્થ :– લજ્જાપૂર્વક કે નિર્લજ્જપણે નતાંગી થઇને તારા વડે કામક્રીડા વિસ્તારી એ પ્રમાણે ક્ષણવાર પણ સાંભળીને જેમનું મન શું વ્યથા પમાડે છે ? અર્થાત્ પમાડતું નથી જેઓ સામાયિક (આર્દ્રકુમારના પૂર્વ જન્મનું નામ) ની જેમ લોકમાં વિકળતાને ધારણ કરતા નથી. એવા આચાર્યની હું સ્તુતિ કરૂં છું ॥૩૨॥

અર્થ :– ઘી, દુધ, (વિગેરે) ભોજન ખરેખર કામની પીડાને માટે થાય છે. માટે આવા વિકારને ઉત્પન્ન કરનાર ભોજનથી હંમેશા દૂર થઇને તપસ્યામાં લીન રહેનારા આચાર્યોનું મન કોઇપણ રીતે વિકૃત થતું નથી. તે આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરૂં છું. ॥૩૩॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

અર્થ :- રૂક્ષ ભોજન પણ શાસ્ત્ર વચનોથી વિહિત કરેલું હિતકારીને માપસર મુનીઓ ગ્રહણ કરે છે. જેથી તત્કાળ સમાધિ થાય છે. તે સમાધિથી સુંદર મનવાળા તેઓ અંદરના શત્રુ સમુહને સારી રીતે હણે છે. એવા આચાર્યની હું સ્તુતિ કરૂં છું. ॥૩૪॥

અર્થ :- વાળને ઓળવા વગેરે સંસ્કાર અને શરીરમાં આભુષણો ધારણ કરવાં થોડા જળથી સ્નાન અને તેલ મર્દન વગેરે શરીરમાં કામાગ્નિના તાપને ઉત્પન્ન કરે છે. એમ જાણીને જેઓ શરીરને કાંઇપણ શણગારતા નથી એવા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરૂં છું. ॥૩૫॥

અર્થ :- ક્રોધથી ભરેલા જીવો પ્રજ્વળતા અગ્નિની જેવા સારી રીતે તપેલા મનવાળા અને બળેલા હોય છે. તેઓ પોતાના અને પરના હિતના નાશને માટે થાય છે. એમ જાણીને સમજુ એવા આચાર્યો કોઇપણ રીતે ક્રોધ યુક્ત થતા નથી તે આચાર્યોની હુ સ્તુતિ કરૂં છું. ॥૩૬॥

અર્થ :- મદથી મદોન્મત થયેલા (જીવો) સ્વજનને પણ સારી રીતે નિંદે છે. અને કાર્યાકાર્યના જણાવનારા મોટા ગુણનો ત્યાગ કરે છે. જેમણે મદની માયા જાણી છે. એ આચાર્યો કોઇ પણ અહંકાર કરતા નથી. એવા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરૂં છું. ॥૩૭॥

અર્થ :- આ માયા અનેક અંધકારનું સાક્ષાત ઉત્તમ ઘર છે. વળી તે મહા મોહના ઉન્માદે ઉત્પન્ન કરવાને અતિશય સુંદર સુંદરી છે. તે માયાના વૈભવ સમુદાય જેમના મનને સંતાપતો નથી એવા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરૂં છું ॥૩૮॥

અર્થ :- આ લોભ પાપ વિષયક ક્ષોભને છોડવી દે છે. અને પૂણ્યકાર્ય કરવામાં ખરાબ એવી સ્તબ્ધતા - અકડાઇને ધારણ કરાવે છે. એવા લોભ જે આચાર્યોના અંતઃકરણમાં કોઇ પણ રીતે પ્રવેશ પામતો નથી. તે આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરૂં છું. ॥૩૯॥

અર્થ :- સૂક્ષ્મ કે સ્થૂલ પ્રાણી સમુહમાં પ્રાણોના નાશને ક્યાંય પણ જરા પણ મન વચન ક્રિયાથી જેઓ કરતા નથી અને શીઘ્ર ક્ષમાના દારિદ્રયને દુર કરે છે. એવા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરૂં છું. ॥૪૦॥

અર્થ :- આ જગતમાં ગુણવાન પુરૂષોમાં વિલાસ કરતા સજ્જનો ક્રોધથી,

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

લોભથી, ભયથી, હાસ્યથી એકવાર પણ અસત્ય બોલતા નથી અને જેઓ સત્ય, તથ્ય અને પથ્ય વચન બોલે છે. એવા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરૂં છું. ॥૪૧॥

અર્થ :– મુનિઓના નાયક જે આચાર્ય ભગવંત ચાર પ્રકારે શાસ્ત્રમાં વર્ણવેલું સ્વામી અદત્ત, જીવાદત્ત, તિર્થંકરદત્ત ગુરૂઅદત્ત સુલભ છતાં કાંઇપણ અદત્તને ઇચ્છતા નથી, સર્વ સંપતિ જેમને પરવશ બનીને આધીન રહે છે, એવા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરૂં છું ॥૪૨॥

અર્થ :– કામદેવને મારી મારીને જેઓ તિર્યંચ સંબંધી હલકું તુચ્છ અને દેવસંબંધી તથા મનુષ્ય સંબંધી સુંદર અબ્રહ્મચર્યના પાપને સેવતા નથી. પરબ્રહ્મમાં રહેલા અને પરમપદના લીન મનવાળા જેઓ છે, તે આચાર્યની હું સ્તુતિ કરું છું. ॥૪૩॥

અર્થ :– લોકો મૂર્છાને આશ્રયીને બિચારા પરવશપણે અતિશય શરીરને કષ્ટદાયી એવા સંતાપને ક્ષણે ક્ષણે પામે છે. એમ જાણીને જેઓ સુજ્ઞ કંઈપણ પરિગ્રહ રાખતા નથી, એવા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરું છું. ॥૪૪॥

અર્થ :– વિધિ પૂર્વક જીનેશ્વર ભગવાનના વચનને ભણીને તેના સત્ય ભાવોને ગ્રહણ કરીને શ્રમને ગણ્યા સિવાય જેઓ ભવ્ય આત્માઓને વિશુધ્ધ અર્થોને સમજાવે છે. પવિત્ર જ્ઞાનચારમાં જેની મતિ જોડાયેલી છે, અને જેઓ શ્રુતધન એટલે જ્ઞાન એજ જેનું ધન છે. એવા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરું છું. ॥૪૫॥

અર્થ :– દર્શનાચારમાં કુશળ એવા જેઓ આ લોકમાં નિશ્ચયે કરીને આઠ પ્રકારે શ્રદ્ધાથી સમ્યક દર્શનને ભવ્યજન રૂપી ખેતરના સમુહમાં વાવે છે. જેમનાથી અરિહંત પરમાત્માનું સામ્રાજ્ય વિશ્વિમાં વિખ્યાત મહિમાંવાળુ જયવંત છે. એવા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરૂં છું. ॥૪૬॥

અર્થ :– વ્રત રૂપી કિલ્લામાં જેઓ પોતાના આત્મા રૂપી ઘરનું સદા રક્ષણ કરે છે. વળી ભવ્ય આત્માઓને નિર્મળ રત્નત્રયને આપીને તેના આત્માનું પણ રક્ષણ કરે છે. આ લોકોમાં જેઓ ચારિત્રાચારને વિશુદ્ધ કરે છે તે આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરૂં છું. ॥૪૭॥

અર્થ :– અહો ! મહાન કર્મરૂપી પર્વતને તોડવા માટે દેદીપ્યમાન બાર પ્રકારનું તપ રૂપી જેઓ વજ્ર ધારણ કરે છે. અને તેથી જેઓ સાક્ષાત્ ઇન્દ્રની

પદવીને અનુભવે છે. આત્મામાં જેઓ સતત રત છે. એવા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરું છું. ॥૪૮॥

અર્થ :– વીર્યાચાર વગર આ વિશ્વમાં કોઇપણ રીતે પાપસમુહના વિસ્તૃત હિતકારી અત્યંત અંતને કરી શકતો નથી. એ પ્રમાણે સમજીને જેઓ વીર્યાચારમાં સતત સાવધાન મનવાળા છે, એવા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરું છું. ॥૪૯॥

અર્થ :– મનુષ્યોના સંચારથી ભેગાયેલા સૂર્યના કિરણથી ઉજ્જ્વળ પરિચિત અને દિવસે ભિન્ન નહીં થયેલ એવા માર્ગને ચારે બાજુએથી જોઇને ઇર્યાસમિતિ-યુક્ત જેનું ગમન પ્રાણીના સમુદાયનું રક્ષણ કરે છે. એવા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરું છું. ॥૫૦॥

અર્થ :– સાવદ્યનો ત્યાગ કરવા પૂર્વક ઘણા આત્માઓને ઉલ્લાસ આપનારા પ્રાયઃ મધુર, સત્ય અને પરિમિત વચન બોલતા પૃથ્વીતલ ઉપર મુનીઓના નાયક જેઓ અહિં ભાષાસમિતિને ધારણ કરે છે, એવા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરું છું. ॥૫૧॥

અર્થ :– ગોચરીના આચારની બેંતાળીસ દોષથી રહિત ભિક્ષાથી વિશુધ્ધ આહાર વગેરે ગ્રહણ કરીને જેઓનું મન, રસને જીતનારું ત્રીજી (એષણા) સમિતિમાં રમે છે, એવા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરું છું. ॥૫૨॥

અર્થ :– નિર્મળ વિધિપૂર્વક મનોયોગ દઇને સારી રીતે જોઇને વસ્ત્ર વિગેરે ઉપકરણો લે છે અને મૂકે છે એ રીતે જ્ઞાની એવા જેઓ ચોથી (આદાન ભંડમત નિક્ષેપણા) સમિતિનું સારી રીતે રક્ષણ કરે છે. એવા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરું છું ॥૫૩॥

અર્થ :– મળ, મૂત્ર વળી એવું કંઇ પણ વિવેકયુક્ત મનપુર્વક જેઓ નાના પ્રકારના જીવોથી રહિત સ્થાનમાં (શુધ્ધ સ્થંડિલ ભૂમિ) ત્યજે છે. અહો ! જેઓ પ્રકટપણે સુંદર પારિસ્થાપનીકા સમિતિનું રક્ષણ કરે છે, એવા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરું છું. ॥૫૪॥

અર્થ :– જેઓનું મનોગુપ્તિથી રક્ષાયેલું, પાપરહિત વિસ્તારવાળા વૈભવવાળું મન રૂપી માછલું પરાભવના મંદિર સ્વરૂપ વિકલ્પોની જાળમાં ફસાતું નથી અને સમાધિરૂપી સમુદ્રમાં વિલાસ કરે છે. એવા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરું છું ॥૫૫॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

અર્થ :- યોગને સાચવવાપૂર્વક આહાર વિગેરે સંજ્ઞાઓનો ત્યાગ કરીને સાક્ષર શિરોમણી જેઓ નિર્મળ વચનને સ્વીકારે છે અથવા મૌનને સ્વીકારે છે એ રીતે વિધિપૂર્વક હમેશા બુદ્ધિમાન એવા વચનગુપ્તિની સારી રીતે રક્ષા કરે છે એવા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરૂં છું. ॥૫૬॥

અર્થ :- ક્રૂર ઉપસર્ગનો પ્રસંગ આવી પડવા છતાં જેઓ મનોહર શરીરનો ત્યાગ કરીને ધ્યાનને વિસ્તારે છે. જેઓની કાયગુપ્તિ ઇચ્છિત ફળને આપનારી કલ્પવેલડી છે. એવા આચાર્યોની હું સ્તુતિ કરૂં છું. ॥૫૭॥

અર્થ :- જે શ્રેષ્ઠ આગમમાં બે શ્રુતસ્કંધ છે. ૨૫ અધ્યયનો છે. ૧૮૦૦૦ પદો છે તે આચારાંગને જેઓ વિધિપૂર્વક વાચનામાં કહે છે. વિનયથી વશ થતા અભિમત એવા ઉપાધ્યાયને હું વંદુ છું. ॥૫૮॥

અર્થ :- જે બે શ્રુતસ્કંધો વડે ત્રેવીશ વિશિષ્ટ અધ્યયનો વડે અને પહેલા કરતા બમણી સંખ્યાવાળા એટલા ૩૬૦૦૦ પદો વડે શોભે છે તે બીજા (સૂત્રકૃતાંગ) અંગને જેઓ મધુર વચને ગાય છે. વિનયથી વશ થતા અને અભિમત એવા ઉપાધ્યાયને હું વંદુ છું. ॥૫૯॥

અર્થ :- એકથી માંડીને દશ સુધીની સંખ્યામાં અધ્યયનોમાં આગમમાં અનેક પદાર્થોનું વિધાન કરવામાં આવ્યું છે તે સૂત્રને (સ્થાનાંગ) વિધિપૂર્વક વિશદ રીતે મૂનિવરો-ને આપે છે ને વિનયથી રાગતા અને અભિમત એવા ઉપાધ્યાયોને હું વંદું છું ॥૬૦॥

અર્થ :- સો સંખ્યા સુધીના વિવિધ પદાર્થોનો સમુદાય જેમાં જયવંત વર્તે છે અને જેની પદ સંખ્યા સ્થાનાંગ કરતાં બમણી અર્થાત ૧૪૪૦૦૦ પદની છે તે ચોથું અંગ (સમવાયાંગ) જેમના વદન કમળમાં ભ્રમરની માફક ગુંજારવ કરે છે એવા ઉપાધ્યાયને હું વંદું છું ॥૬૧॥

અર્થ :- જે અનંત અર્થો નય, ગમ, ભંગ વડે કરીને યુક્ત છે. જેમાં ચાલીશ શતકોની અતિશય નિર્મળ રચના છે તે ભગવતી અંગને જેઓ મુનિવરોના સમુદાયમાં વિસ્તારે છે. તે ઉપાધ્યાયોને હું વંદું છું ॥૬૨॥

અર્થ :- જેમાં બે શ્રુતસ્કંધ છે. પ્રથમ શ્રુતસ્કંધમાં ૧૯ કથાઓ છે અને બીજા શ્રુતસ્કંધમાં ૧૦ કથાઓ છે. આ કથાઓ ધર્મને પુષ્ટ કરનારી અને વિસ્તૃત

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

ગુણવાળી છે. આ જ્ઞાતાધર્મકથાંગ સૂત્રને પંડિત એવા જેઓ શિષ્યોની સમક્ષ વિવરણ કરી સમજાવે છે તે ઉપાધ્યાયોને હું વંદું છું ॥૬૩॥

અર્થ :– દશ અધ્યયન વાળા એક શ્રુતસ્કંધ રૂપ જે આગમમાં દેશવિરતિ ગ્રહણ કરેલા આનંદ વગેરે દશ શ્રાવકોની સમ્યક્ત્વપૂર્વકના વ્રતની કથા છે તે સાતમા ઉપાસકદશાંગ અંગને જેઓ મુનિવરોને સારી રીતે કહે છે તે ઉપાધ્યાયોને હું વંદું છું. ॥૬૪॥

અર્થ :– જેમાં એક શ્રુતસ્કંધ છે નેવું અધ્યયનો છે જેની રચના સુંદર છે. જેમાં આઠવર્ગ છે અને જે અનંત અર્થનું મંદિર છે. અતિશય નિર્મળ એવા તે આઠમાં અંતગડદશાંગને જેઓ શિષ્યોને ઉપદેશે છે તે ઉપાધ્યાયોને હું વંદન કરું છું ॥૬૫॥

અર્થ :– એક શ્રુતસ્કંધ સ્વરૂપ જે આગમોમાં અનુત્તર વિમાનમાં ગયેલા આત્માઓની વાત ૩૩ અધ્યયન અને ત્રણવર્ગમાં કહેલી છે તે નવમાં અનુતરોપપાતિક અંગને જેઓ શિષ્યો સમક્ષ કહે છે તે ઉપાધ્યાયોને હું વંદું છું. ॥૬૬॥

અર્થ :– જે દશએકવચન સ્વરૂપ એક શ્રુતસ્કંધ યુક્ત દશમાં પ્રશ્ન વ્યાકરણ અંગમાં દશ પ્રકારના ગંભીર અર્થની યોજના છે. તે અંગને જેઓ હર્ષપૂર્વક અંતઃકરણમાં સ્થાપન કરે છે તે ઉપાધ્યાયોને હું વંદું છું. ॥૬૭॥

અર્થ :– જેમાં બે શ્રુતસ્કંધ છે અને જેમાં વીશ અધ્યયનો છે અને જેમાં ૧,૮૪,૩૨૦૦૦ પદો છે તે ૧૧ માં વિપાકાંગને કહેવામાં અપ્રમત્ત છે તે ઉપાધ્યાયોને હું વંદું છું. ॥૬૮॥

અર્થ :– જેમાં ચંપાનગરીનું સમવસરણ સુંદર રીતે અદ્‌ભૂત વર્ણવ્યું છે. જે પહેલા અંગનુંઉપાંગ જગતને અદ્વિતિય હિતકારી જયવંતુ વર્તે છે. મુનિજનોને તે ઉપાંગને વિધિપૂર્વક જ્ઞાનિ એવા જેઓ વાંચના આપે છે તેવા ઉપાધ્યાયોને હું વંદુ છું. ॥૬૯॥

અર્થ :– જે બીજા ઉપાંગમાં પ્રદેશી રાજાએ પુછેલા પ્રશ્નો કેશીગણધરે ભગવંતે કહેલ ઉત્તરો છે. અને સૂર્યાભદેવે કરેલા નૃત્યનું વર્ણન છે. તે ઉપાંગ જેમના મુખરૂપી ઘરમાં નૃત્ય કરે છે. તે ઉપાધ્યાયોને હું વંદુ છું. ॥૭૦॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

અર્થ :- જેથી અભ્યંતર લક્ષ્મીવાળા મહાપુરૂષો જીવઅજીવનું જ્ઞાન મેળવે છે. જેમાં નંદીશ્વરદ્વીપ, વિજય દેવ વગેરેનું જ્ઞાન છે. તે બીજું ઉપાંગ જેઓ કહે છે તેથી સ્થિર બુદ્ધિવાળા મુનિવરોને સ્થિરતા આપે છે તે ઉપાધ્યાયોને હું વંદુ છું. ॥૭૧॥

અર્થ :-જે અતિશયભર્યા અર્થોથી વિશદ છે. અદ્વિતીય ૩૬ પદોથી ભરેલ છે અને જેના શ્રવણથી પાપ શીઘ્ર દૂર થાય છે. તે ચોથું ઉપાંગ જેમના ભણાવવા વડે અહો શોભે છે. એ ઉપાધ્યાયોને હું વદું છું ॥૭૨॥

અર્થ :- જેમાં સૂર્યવિગેરેના માંડલાનો વિસ્તાર કહેવાયો છે. અને પ્રસિધ્ધ ૫૦ પ્રાભૃતમાં તારાઓનું સ્વરૂપ છે તે પાંચમું ઉપાંગ જેમના વદન ચંદ્રમાં વિશે સારી રીતે રમણ કરે છે. તે ઉપાધ્યાયોને હું વંદું છું ॥૭૩॥

અર્થ :- જે જંબુપ્રજ્ઞપ્તિ આગમનાં ૬૪ ઇન્દ્રોએ અતિશય ભક્તિ પુર્વક કરેલા જિનેશ્વર ભગવંતના જન્મમહોત્સવનું વર્ણન છે તે છઠ્ઠું ઉપાંગ જેમના મુખરૂપી સૂર્યથી વિકાસ પામેછે તે ઉપાધ્યાયોને હું વંદું છું ॥૭૪॥

અર્થ :- પચાસ પ્રાભૃતયુક્ત જે ઉપાંગમાં શ્રાવણવદ –૧ થી આરંભીને ઘડી વિગેરેની ગણના સમજાવવામાં આવીછે તે ચંદ્રપ્રજ્ઞપ્તિ ઉપાંગને જેઓ વર્ણન કરીને વિકાસ પમાડે છે તે ઉપાધ્યાયોને હું વંદું છું ॥૭૫॥

અર્થ :- જે આઠમાં ઉપાંગમાં ભગવાને 'કાળ' વગેરે દશકુમારો લડાઇ કરીને નારકોમાં ગયા એ વૃતાંત સ્પષ્ટ વર્ણવ્યું છે તે ઉપાંગને જેમના મુખથી સાંભળીને ભવ્યાત્માઓ જ્ઞાન મેળવીને મુક્તિ પામે છે તે ઉપાધ્યાયોને હું વંદું છું. ॥૭૬॥

અર્થ :- જે નવમાં ઉપાંગમાં પદ્મ વગેરે દશ પુણ્યવંત કુમારો ચારિત્ર લઇને ભવિષ્યમાં જેમનું કલ્યાણ થવાનું છે. તે સ્વર્ગને પામ્યા એ અધિકાર છે તે ઉપાંગને જેઓ મુનીઓને કહે છે તે ઉપાધ્યાયોને હું વંદુ છું. ॥૭૭॥

અર્થ :- ચંદ્ર, સૂર્ય, શુક્ર બહુપુત્રિકાદેવી, પુર્ણભદ્ર, શીવ, દત્ત, માણીભદ્ર, બલ અને અણાઢિય એ દશનું વૃતંત જેઓ દશમાં ઉપાંગથી સમજાવે છે તે ઉપાધ્યાયોને હું વંદું છું ॥૭૮॥

અર્થ :- શ્રી, હ્રી, લક્ષ્મી, ધૃતિ, સુરા–કીર્તિ–મતિ–રસા, ઇલા, ગન્ધા એ દશ જે ઉપાંગમાં ગવાયેલી છે. તે ૧૧ માં ઉપાંગને જેઓ મુનિઓને સમજાવે છે તે ઉપાધ્યાયોને હું વંદુ છું. ॥૭૯॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

અર્થ : દ્વારામતિ નગરીમા થયેલા નિષધકુમાર વિગેરે સજ્જનકુમારોનું ઉલ્લાસભર્યું ચરિત્ર જેમાં કહેવાયેલું છે તે બારમું ઉપાંગ જેમના વદન મંદિરથી પ્રસરે છે તે ઉપાધ્યાયોને હું વંદુ છું. ॥૮૦॥

અર્થ :– જેમાં મતિજ્ઞાન, શ્રુતજ્ઞાન, અવધિજ્ઞાનનો અધિકાર છે મનઃપર્યવ અને મનઃ પર્યજ્ઞાન તથા કેવળ જ્ઞાન પણ યથાસ્વરૂપે કર્યું છે. તે આ નદીસૂત્રને ચરણસિતરી અને કરણસિતરીના ધારક જેઓ ગણે છે તે ઉપાધ્યાયોને હું વંદુ છું. ॥૮૧॥

અર્થ :– જેમાં જિનેશ્વર ભગવંતોએ ભાખેલા વિશિષ્ટ આગમોને પ્રાપ્ત કરવામાં નામ સ્થાપના –દ્રવ્ય અને ભાવ એ ચાર પ્રકારનો નિક્ષેપ જેનો વિસ્તૃત વૈભવ છે એવો સારી રીતે હેતુભૂત છે એમ સમજાવ્યું છે તે અતિગહન અનુયોગ દ્વાર સૂત્રને જેઓ સમજાવેછે તે ઉપાધ્યાયને હું વંદું છું ॥૮૨॥

અર્થ :– જેઓ મનવચન, કાયાથી પ્રાણના વિનાશથી વિરમવારૂપ પ્રથમ મહાવ્રતને ધારણ કરીને આ લોકમાં વિશદ રીતે અભયની રક્ષા કરે છે પોતાંના નિશ્ચિત સાધ્યમા હંમેશા યત્નપૂર્વક પ્રવૃતિ કરે છે એવા મુનિવરોનું નિર્મળચરિત્ર ખરેખર વિજયવંતુ વર્તે છે. ॥૮૩॥

અર્થ :– મોટા કલ્યાણની અંદર નિમગ્ન થયેલા જે મુનિવરો મૃષાવાદથી વિરમે છે અને આત્મામાં જેઓને હિતવિલાસ સ્થાપન કર્યો છે. જેઓ સતત ઉપયોગ વાળા છે જેએ સત્યવચન વદે છે. અને મનમાં ખરેખર સદ્હિતને પ્રાપ્ત કરે છે એવા મુનિવરોનું નિર્મળચરિત્ર ખરેખર વિજયવંતું વર્તે છે ॥૮૪॥

અર્થ :– જેઓ પોતાની વાચના સફળ થાય કે નિષ્ફળ થાય છતાં પણ તૃણમાત્ર પણ પારકી માલિકીનું નહિ દીધેલું કોઇપણ રીતે ઇચ્છતા પણ નથી તે કારણે જેઓને સર્વ સંપતિઓ શીઘ્ર પોતાની મેળેજ વરે છે એવા મુનિવરોનું નિર્મળચરિત્ર અહીં વિજયવંતુ વર્તે છે. ॥૮૫॥

અર્થ :– અહિ જેઓને તીવ્ર સતત શાસ્ત્રને વિષે રતિ રહે છે. રતિ સમી સ્ત્રી જેઓના મનમા સ્વપ્ને પણ આવતી નથી. જેઓ મુનિપણાને ધારણ કરીને પાપોનું નિર્ધુવન, નિરસન જેઓ કરે છે તેવા મુનિવરોનું નિર્મળ ચરિત્ર અહો વિજયવંતુ વર્તે છે. ॥૮૬॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

અર્થ :- જેઓ હંમેશા ગ્રંથને વિશે – શાસ્ત્રને વિશે આશક્ત હોવા છતાં પૃથ્વી ઉપર શ્રેષ્ઠ નિગ્રંથ કહેવાય છે. અને નવ પ્રકારના બાહ્ય અને ચૌદ પ્રકારના આભ્યંતર પરિગ્રહ ઉપર જેઓની મમતા નાશ પામી છે. એવા સહજ પણ મૂર્ચ્છાને ધારણ કરતા નથી. જેઓની સમતા વિખ્યાત છે એવા મુનિવરોનું નિર્મળ ચારિત્ર અહો વિજયવંતુ વર્તે છે. ॥૮૭॥

અર્થ :- જેઓનુ હૃદય આ લોકમાં જીવોનું રક્ષણ કરવામાં સારી રીતે આશક્ત થયેલું છે. તેથી જેઓએ રાત્રિને વિશે અનશન – પાણીનો ત્યાગ કર્યો છે. જેઓએ સતત સિદ્ધાંતથી ઉત્પન્ન થયેલું અમૃત પીધું છે. એવા મુનિવરોનું નિર્મળ ચારિત્ર અહો વિજયવંતુ વર્તે છે. ॥૮૮॥

અર્થ :- ઘર વિગેરે – બનાવવામાં – ખોદવામાં, ખેતીમાં વિગેરેમાં પૃથ્વિકાયની હિંસા જાણીને જેઓ જરા પણ મનને રાખતા નથી. અહિં જેઓ હંમેશા સારી રીતે પ્રગટપણે પૃથ્વિકાયને રક્ષે છે. તેવા મુનિઓનું નિર્મળ ચારિત્ર અહો વિજયવંતુ વર્તે છે. ॥૮૯॥

અર્થ :- પાણીના જીવોના રક્ષણમાં આસક્ત હોવા છતાં પણ જેઓ સચિત પાણી વાપરતા નથી અને શરીરને જળથી સિંચતા નથી જેઓ વર્ષાઋતુમાં સંલીનતા નામના શ્રેષ્ઠ તપમાં હંમેશા આસક્ત રહે છે. એવા મુનિવરોનું નિર્મળ ચારિત્ર અહો વિજયવંતુ વર્તે છે. ॥૯૦॥

અર્થ :- પ્રકાશને ફેલાવા છતાં પણ જેઓ દીવા સળગાવતા નથી જડતાથી રહીત જેઓ ઠંડી વાય છતાં અગ્નિ કરતા નથી. વ્રતધારી જેવો તેજસકાયની ચારે બાજુથી રક્ષા કરે છે. એવા મુનિવરોનું ચારિત્ર વિજયવંતુ વર્તે છે. ॥૯૧॥

અર્થ :- જેઓ પવિત્ર પંથવાળા પવનનો જય કરીને સારી રીતે મન જીતવા માટે ફુંક પણ મારતા નથી. અને પંખો ચલાવવાથી પણ વિરમે છે. તેમની ગતિ સારી રીતે વાયુકાળને પણ કુશળ પમાડે છે. એવા મુનિવરોનાં નિર્મળ ચરિત્ર અહો જયવંત વર્તે છે. ॥૯૨॥

અર્થ :- જેઓ સચિત્ત ફળ, પુષ્પ, મૂળ, છાલ, કાષ્ઠ, પત્ર અને બીજનો કંઇપણ ઉપયોગ કરતા નથી અને એ રીતે જેઓ વનસ્પતિકાયની સર્વ પ્રકારે રક્ષા કરે છે. એવા મુનિવરોનું નિર્મળ ચારિત્ર અહો જયવંત વર્તે છે. ॥૯૩॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

અર્થ :- જળો, પતંગીયું વિગેરે જીવોનું રક્ષણ કરવામાં હંમેશા યતનાવાળા રહે છે પંચેન્દ્રિયોના હિતમાં પણ જેઓ સયત્ન રહે છે વિધિ પૂર્વક જેઓ ઉપયોગશીલ બનીને ત્રાસથી ત્રસકાયનું રક્ષણ કરે છે એવા મુનિવરોનું નિર્મળ ચારિત્ર અહો વિજયવંત વર્તે છે. ॥૯૪॥

અર્થ :- પોતે કુશળ બન્ને ચક્ષુવાળા છે અને કોઇપણ જગ્યાએ એકાંત-દૃષ્ટિને ધારણ કરતા નથી અને કાંત દૃષ્ટિથી વ્યવહાર માર્ગમાં ચતુરાઇ ધારણ કરીને ચાલે છે. અને હંમેશા એકેન્દ્રિઓને વ્યથા પમાડવાથી વિરમે છે એવા મુનિવરોનું નિર્મળ ચારિત્ર અહો વિજયવંત વર્તે છે. ॥૯૫॥

અર્થ :- જળો, છીપ, કરમીયા, (કાષ્ઠનાં) શંખ, કોડી, જળો જેવું લાંબુ જીવડું આ બધાં બે ઇન્દ્રિયપણે પ્રસિધ્ધ છે. એ સર્વની મન-વચન-કાયાની રક્ષામાં જેઓ ઉદ્યુક્ત છે એવા મુનિવરોનું નિર્મળ ચરિત્ર અહો વિજયવંતુ વર્તે છે. ॥૯૬॥

અર્થ :- બગાઇ, લીખ, માંકડ, ઉધઇ, ઇન્દ્રગોપ (લાલ તે ઇન્દ્રિય જીવડું) ધીમેલ, જુ, આ બધા પૃથ્વિમાં તેઇન્દ્રિયપણે વિખ્યાત છે. જેઓ આ સર્વેને ક્રોધમાં પણ હણતા નથી. એવા મુનિવરોનું નિર્મળ ચરિત્ર અહો વિજયવંતુ વર્તે છે. ॥૯૭॥

અર્થ :- ભમરો, કરોળીયું, મધમાખી, કાનખજુરો, આગીયું જંગલીમાખ, વીંછી, વરટા (ચોરેન્દ્રિય જીવ) વર્પકરીકા, જીલ્લીકા વિગેરે ચૌરેન્દ્રિ જીવોનું પોતાનું હિત સાધવામાં ચતુર એવા જેઓ પોતાની જેમ રક્ષણ કરે છે એવા મુનિવરોનું નિર્મળ ચરિત્ર અહો જયવંતુ વર્તે છે. (જીલ્લીકા-ઝાલર જેવા વાજીંત્ર જેવું અવાજ કરનાર પ્રાણી) ॥૯૮॥

અર્થ :- તિર્યંચો, નારકીઓ, મનુષ્યો અને દેવો એ પ્રમાણે જગતનાં ચારે પ્રકારના પંચેન્દ્રિયોને ક્ષણપણ મનથી પણ જેઓ હણતા નથી. કલુષતા વગરના અને કઠોરતા વગરનાં જેઓ વચન અને કાયા વડે ન હણે એમાં શું કહેવું ? એવા મુનિવરોનું નિર્મળ ચરિત્ર અહો જયવંત વર્તે છે. ॥૯૯॥

અર્થ :- લોભને જીતે છે તે જીતી ન શકાય એવું મોહનું સૈન્ય સર્વ જીતાય છે. અને મોહ જાય એટલે મુક્તિ હાથમાં આવી જાય છે. એ પ્રમાણે

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

જાણનારા જેઓ જે નિગ્રંથો હૃદયમાં અંશમાત્ર પણ લોભ ધારણ કરતા નથી એવા મુનિવરોનું નિર્મળ ચારિત્ર અહો જયવંત વર્તે છે. ॥૧૦૦॥

અર્થ :– જેઓની પાસે ક્ષમારૂપી શસ્ત્ર છે તેઓને કોઇથી પણ ભય નથી. સ્વર્ગને અને પૃથ્વિમાં નિર્મળ યશથી તેઓ હંમેશા દીપે છે. એવી રીતે સમજીને રોષ વગરના જેઓ સદાકાળ ક્ષમાને ધારણ કરે છે એવા મુનિવરોનું નિર્મળ ચરિત્ર અહો ! વિજયવંત વર્તે છે. ॥૧૦૧॥

અર્થ :– બાર પ્રકારની ધર્માનુપેક્ષા (અનિત્ય – અશરણ વિગેરે બાર ભાવના) પંચ મહાવ્રતોની સ્થિરતા માટે શાસ્ત્રમાં બતાવેલી પચીસ ભાવનાઓ અને મૈત્રી વગેરે ચાર ભાવનાઓ જેઓના ચિત્તરૂપી ઘરને છોડતી નથી. એવા મુનિઓનું નિર્મળ ચરિત્ર અહો ! વિજયવંત વર્તે છે. ॥૧૦૨॥

અર્થ :– પાત્ર, વસ્ત્ર, સારા ઉપકરણો અને વસ્તીનું જેઓ દૃષ્ટિથી અને કોમળ પુંજણીથી પ્રમાર્જન કરે છે. નિયમિત પડિલેહણ વિધાનમાં જેઓ પ્રમાદ કરતા નથી એવા મુનિવરોનું નિર્મળ ચરિત્ર અહો વિજયવંત વર્તે છે. ॥૧૦૩॥

અર્થ :– મનુષ્યો વિરામ રહિત ભવરૂપી જંગલમાં ભમી–ભમીને કોઇપણ રીતે સંયમ વિના સિધ્ધિને પ્રાપ્ત કરતા નથી. તેથી જેઓ શિઘ્ર સંયમ યોગનાં પદને સ્થાનને સેવે છે. એવા મુનિવરોનું નિર્મળ ચરિત્ર અહો જયવંત વર્તે છે. ॥૧૦૪॥

અર્થ :– પિતા (મન) અને પુત્ર (કામ) એ સાથે થઇ જાય તો દાન્ત શાન્ત આત્માઓને પણ કયું પાપ ઉત્પન્ન કરાવતા નથી. એ પ્રમાણે શીઘ્ર જાણીને મનથી મનોજને દુર કરીને જેઓ અતિચપળ એવા મનને રક્ષણ કરવામાં તત્પર રહે છે એવા મુનિઓનું નિર્મળ ચરિત્ર અહો ! જયવંત વર્તે છે. ॥૧૦૫॥

અર્થ :– સ્વવશ નહિ કરેલું વચન જગતમાં કયા અનર્થને જન્મ આપતું નથી અને સારી રીતે વશ કરેલું વચન કલ્યાણને વિસ્તારે છે. માટે જે મુનિવરો વચનગુપ્તિ ધારણ કરીને "વાચંયમ" એવા પ્રકારનું નામ ધારણ કરે છે એવા મુનિવરોનું નિર્મળ ચરિત્ર અહો જયવંતુ વર્તે છે. ॥૧૦૬॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

અર્થ :- સ્વાધીન શરીર ખરેખર અશરીર માટે – મોક્ષને માટે થાય છે. અને અસ્વાધીન શરીર અનંતાનંત શરીરોને જગતમાં ઉત્પન્ન કરે છે. **અર્થાત્ત**– શરીરને વશમાં રાખ્યું હોય તો મોક્ષ મળે અને વશમાં ન રાખ્યું હોય તો અનંતાનંત શરીરો ધારણ કરવા પડે) માટે જેઓ સતત કાયાનું કાયગુપ્તિથી રક્ષણ કરે છે એવા મુનિવરોનું નિર્મળ ચરિત્ર અહો જયવંતુ વર્તે છે. **॥૧૦૭॥**

અર્થ :- ક્ષુધા વિગેરે બાવીસે પરિસહોને સહન કરેલા તે પરિસહો મોક્ષ-સુખને આપે છે. એથી જેઓએ ધૈર્ય ધારણ કરીને સારી રીતે પરિસહ સૈન્ય જીત્યું છે. એવા મુનિવરોનું નિર્મળ ચરિત્ર અહો જયવંતુ વર્તે છે. **॥૧૦૮॥**

અર્થ :- જેઓ શુભધ્યાનમાં મિત્ર છે. મોક્ષપદની પવિત્ર ઉચ્ચ ધૂરાને વહન કરવામાં જેઓ વૃષભ છે ધર્મના માર્ગમાં જેઓ ચાલે છે દુર્મંત માર્ગમાં જેઓ જવાની કદીપણ ઇચ્છા કરતા નથી. જે પ્રસરતા ઉપસર્ગો વડે પણ માર્ગથી જરાપણ ચલિત થતા નથી એવા મુનિવરોનું નિર્મળ ચરિત્ર અહો જયવંતુ વર્તે છે. **॥૧૦૯॥**

—— સમાપ્તમ ——

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

(२)

श्रीचतुर्विंशति-जिनस्तुतयः
श्लोकान्वय-वृत्तिभ्यां च विराजिताः

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ श्रीचतुर्विंशति–जिनस्तुतयः ॥

जयश्रीनेतारं प्रथमजिनपं नोनुवति ये,
मुदा मामान्यन्ते त्रिदशवृषभैस्तेऽपि हरिवत् ।
प्रपेप्रीयन्ते ये वृषभजिन–नेत्रामृतरसैः,
प्रपेप्रीयन्ते ते युवतिभिरहो विष्णुपितृवत् ॥१॥

अन्वयः– ये, जयश्रीनेतारम्, प्रथमजिनपम्, नोनुवति, ते, त्रिदशवृषभैः, अपि, मुदा, हरिवत्, मामान्यन्ते, ये, वृषभजिननेत्रामृतरसैः, प्रपेप्रीयन्ते, ते, युवतिभिः, विष्णुपितृवत्, प्रपेप्रीयन्ते, अहो ॥

वृत्तिः – ये–यत्प्रकाराः, भव्यजनाः, । जयश्रीनेतारम्–जयो विजयश्च श्री–र्लक्ष्मीश्च जयश्रियौ तयोर्नेता–अग्रणी जयश्रीनेता तन्तथा, विजयस्य लक्ष्म्याश्च सम्प्रापकमित्यर्थः । प्रथमजिनपम्–जिनानर्हतः पाति रक्षतीति जिनपः, जिनेश्वर इत्यर्थः, प्रथम आदिश्चासौ जिनपः प्रथमजिनपस्तन्तथा, वृषभनामानमादि-जिनेश्वरमिति यावत् । नोनुवति–पुनः पुनरतिशयेन वा नुवन्तीति 'नु' धातोः 'व्यञ्जनादेरेकस्वरात्"३।४।९॥ इत्यनेन यङि प्रत्यये अनमित्तिकत्वादन्तरङ्गत्वेन 'वहुलं लुप्" इति यङो लुपि प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वात् 'सन् यङश्च "४।१।३॥ इति द्वित्वे "आगुणावन्यादेः " ४।१।४७॥ इति गुणे "तिवा शपा" इति परिभा–षया 'इङितः" ३।३।२२॥ इत्यस्याप्रवृत्तौ ' शेषात्"– ३।३।१००॥ इति परस्मै–पदे वर्तमानायामन्ति–विभक्तौ "एताः शितः" ३।३।१०॥ इति शित्वे 'नो लुक्' ४।२।९६॥ इति न्–लुकि "यङ्लुप् च" इत्यदादित्वात् शबभावे "शिदवित्"–४।३।२०॥ इति ङित्वात् 'नामिनः' ४।३।४॥ इति गुणाऽप्रवृत्तौ "धातोरिवर्णो–वर्णस्ये० २।१।५०॥ इत्युवि नोनुवति, पुनः पुनरतिशयेन वा प्रणमन्तीत्यर्थः । ते–तादृशाः–नोनोतार इत्यर्थः । त्रिदशवृषभैः–त्रिदशेषु देवेषु वृषभाः श्रेष्ठाः त्रिदशवृषभास्तैस्तथा । अपि–समुच्चयार्थकमव्ययम् "गर्हासमुच्चयप्रश्नशङ्का–सम्भावनास्वपी" त्यमरः । हरिवत् विष्णुरिव । "यमानिलेन्द्रचन्द्रार्कविष्णु–सिंहांशुवाजिषु शुकाहिकपिभेकेषु हरिर्ना कपिले त्रिषु" **इत्यमरनानार्थः ।** मुदा–प्रीत्या । 'मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षः प्रमोदामोदसंमदाः' इति अमरः । मामान्यन्ते पुनः पुनरतिशयेन वा मान्यन्ते इति मान् धातोः "स्वार्थणिजन्ताद् यङि 'णेरनिटि" ४।३।८३॥ इति णिलोपे, द्वित्वे

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

'ह्रस्वः ४।१।३९।। इति ह्रस्वत्वे च 'आगुणा'- ४।१।४२।। इत्यात्वे वर्तमानाया-मन्ते प्रत्यये 'लुगस्यादेत्यपदे' ४।१।३९।। इत्यकारस्य लुकि मामान्यन्ते-पोपूज्यन्ते । तथेति शेषः । ये-यत्प्रकारा जनाः । वृषभजिन-नेत्रामृतरसैः-वृषभःश्रीआदिनाथ-श्चासौ जिनोऽर्हन् वृषभजिनस्तस्य नेत्रे नयने वृषभजिननेत्रे तयोरमृतरसाः अमृततुल्या अमरप्रख्यकारिणो रसाः वृषभजिननेत्रामृतरसास्तैस्तथा । सौम्य-कृपास्निग्धावलोकनैरिति च कृपास्निग्धत्वात्सौम्यत्वाच्च रसवदवलोकनानि यावत्, तेन तथावलोकनानां विषरूप-विषयसमृति-दुःखनाशकत्वादमृतत्वमस्त्ये-वेति भावः । प्रपेप्रीयन्ते-पुनः पुनरतिशयेन वा प्रप्रीणन्तीति प्रपूर्वात्प्री धातो-र्यङि द्वित्वादिकार्य्ये गुणे वर्तमानायामन्ते विभक्तौ, अल्लुकि प्रपेप्रीयन्ते-अवलो-लोकिताः प्रीतिमनुभवन्ति, ते-तादृशाः । युवतिभिः-रमणीभिः । विष्णुपितृवत्-वेवेष्टि-व्याप्नोति जगदिति विष्णुः कृष्णः, तस्य पिता जनकः विष्णुपिता, तेन तुल्यम् विष्णुपितृवत्, वसुदेववदित्यर्थः, सौभाग्यगुणाधानादिति भावः । प्रपेप्री-यन्ते-तातृप्यन्ते, अहो-आश्चर्य्यम् । तदवलोकनस्येदृगाश्चर्य्यकरं सामर्थ्यमिति भावः । उपमारूपकयोः संसृष्टिः ।।

यज्जन्मैकविधौ चतुर्विधसुरैर्मोमुद्यते मेरुव-
च्छक्रैर्दिव्यविभूषणैर्जगति यो बोभूष्यते स्वाङ्गवत् ।
जेजीयादजितः समेन्द्रमहितः सर्वान् रिपून् सर्वतः,
श्रीहस्त्यङ्कजिनः प्रशीर्णवृजिनः सिद्ध्यै प्रपोपोष्टु नः ।।२।।

अन्वयः-यज्जन्मैकविधौ, चतुर्विधसुरैः, मेरुवत्, मोमुद्यते, शक्रैः, दिव्य-विभूषणैः, स्वाङ्गवत्, यः जगति, बोभूष्यते, समेन्द्रमहितः, प्रशीर्णवृजिनः, श्री-हस्त्यङ्कजिनः अजितः, सर्वतः, नः, सर्वान्, रिपून्, जेजीयात्, सिद्ध्यै प्रपोपोष्टु ।

वृत्तिः-यज्जन्मैकविधौ-यस्य जन्मात्मकः जन्मग्रहणरूप एव एकोऽनिर्व-चनीयस्वरूपो बिधिः- महोत्सवकर्म तस्मिंस्तथा, यदीयजन्मग्रहणमहोत्सव इत्यर्थः । चतुर्विधसुरैः-चतुर्भिः प्रकारैरिति चतुर्विधाः, ते च ते सुरा देवाश्चतुर्विध-सुरास्तैस्तथा-देवयक्षादिभिरित्यर्थः, मेरुवत्-मेरौ हेमाद्रौ यथा मोमुद्यते तथा मोमुद्यते-पुनः पुनरतिशयेन वा मुद्यते इति मुद् धातोर्यङि लुब्द्वित्वगुणेषु सत्सु कर्मणि वर्तमानायां 'तत्साप्यात्'- ३।३।२१।। इत्यात्मनेपदप्रत्यये "क्यः शिवि" ३।४।६०।। इति क्ये मोमुद्यते-जाहृष्यते । तथेति शेषः । यः यत्प्रकारो जिनः ।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

शक्रैः–इन्द्रैः। दिव्यविभूषणैः–दिवि स्वर्गे भवानि दिव्यानि–अलौकिकानीत्यर्थः, दिव्यानि, च तानि विभूषणान्यलङ्करणानि मण्डनानीति यावद्, दिव्यविभूषणानि तैस्तथा, करणैः। स्वाङ्गवत्–स्वस्य निजस्य आत्मन इत्यर्थः अङ्गानि–शरीरावयवाः स्वाङ्गानि तैस्तुल्यम् स्वाङ्गवत्–स्वशरीरावयवतुल्यमित्यर्थः। यथा तेनादराच्छोभातिशयार्थं स्वाङ्गं, विभूषितं तथादरातिरेकादिति भावः। जगति–जगत्याम् भुवने इति यावत् 'स्याल्लोको विष्टपं विश्वं भुवनं जगती जगत्" ६।१। इत्यभिधानचिन्तामणिः। जिनस्याखिलोत्कृष्ट–प्रभावशालित्वात्तैः पृथिव्यामागत्यैव बोभूष्यते इति भावः। बोभूष्यते–पुनःपुनरतिशयेन वा भूष्यतेऽलङ्क्रियते इति भूष् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे "द्वितीयतुर्य्ययोः"– ४।१।४२।। इति वत्वे, कर्मणि वर्तमानायामात्मनेपदे ते क्ये बोभूष्यते- आवाभ्रियते। यत्त–दोर्नित्यसम्बन्धात् स इत्याक्षिप्य, समेन्द्रमहितः समैः सर्वैः इन्द्रैः–शक्रैः राज–भिश्च महितः पूजितः। प्रशीर्णवृजिनः–प्रशीर्णानि विध्वस्तानि वृजिनानि दुरितानि पापानीति यावद् येन स तथा। सकलकलुषहर्त्तेत्यर्थः। 'अस्त्री पङ्कं पुमान् पाप्मा पापं किल्विषकल्मषम्। कलुषं वृजिनैनोघमंहो दुरितदुष्कृतम् इत्यमरकोशः। श्रीहस्त्यङ्कजिनः – श्रीर्लक्ष्मीस्तया सहितः श्रीसहितः स चासौ हस्ती गजः श्रीहस्ती, मयूरव्यंसकादित्वादुत्तरपदस्य पूर्वसमासीयस्य लोपः, श्रीहस्ती अङ्कश्चिह्नं लाञ्छनमिति यावद् यस्य स श्रीहस्त्यङ्कः स चासौ जिनोऽर्हन् श्रीहस्त्यङ्कजिनः–श्रीहस्तिकेतुजिनः। "कलङ्काङ्कौ लाञ्छनञ्च चिह्नं लक्ष्म च लक्षणम्" इति कोशः। अजितः–न जितः पराजितः पराभूत इति यावत् केनापीत्यजितस्तन्नामतीर्थङ्कर इत्यर्थः। सर्वतः–सर्वतोभावेन। नः अस्माकम्। सर्वान्–समस्तान् आभ्यन्तरान् वाह्याश्च। रिपून्–शत्रून्। जेजीयात्–पुनः पुन–रतिशयेन जीयादिति जिधातोर्यङि, लुब्द्वित्वगुणेषु सत्सु जेजि 'इत्यवस्थायां परस्मैपदे सप्तम्यां यान् प्रत्यये "दीर्घश्च्वि" ४।३।१०८।। इति दीर्घत्वे जेजीयात्-परावोभूयात्। तथेति शेषः। सिद्ध्यै–मुक्त्यै, अणिमाद्यर्थञ्च। "अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा। प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वञ्चाष्ट–सिद्धयः"।। प्रपोपोष्टु–पुनःपुनरतिशयेन प्रपुष्यतु इति प्रपूर्वात्पुष् धातोर्यङि लुब्द्वित्वगुणेषु सत्सु प्रपोपुष् इत्यवस्थायां "विधिनिमन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थने" ५।४।२८।। इत्यनेन प्रार्थनायां पञ्चम्यां तुवि विभक्तौ "लघोरुपान्त्यस्य" ४।३।४।। इति गुणे "तवर्गस्यश्चवर्गष्टवर्गाभ्यां योगे चटवर्गौ" १।३।६०।। इति

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

टवर्गत्वे प्रप्रोपोष्टु बरिभरीतु। आभ्यन्तरबाह्यशत्रुविघटनद्वारा मुक्तिपोषकों जायतामित्यर्थः। अत्र रिपुजयस्य सिद्धिपोषणहेतुत्वात्काव्यलिङ्गमलङ्कारः, स्वाङ्गवदित्युपमा च। 'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं, निगद्यते" "साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमाद्वयो" रित्युभयत्र **साहित्यदर्पणः** ॥२॥

स्तोतुं यः सुपनीपनीति नवनैः श्रीसम्भवं श्रीभवं,
माहात्म्यात्स पनीपदीति जिन ! ते पारं भवाम्भोनिधेः ।
रोदस्योरपनेनयीति दुरितध्वान्तानि मार्तण्डवन्,
मोक्षस्योपरि जेजयीतु स धियं वो वाजिलक्ष्मा जिनः ॥३॥

अन्वयः – श्रीभवम्, श्रीसम्भवम्, स्तोतुम्, नवनैः, यः, सुपनीपनीति जिन ! ते, माहात्म्यात्, सः, भवाम्भोनिधेः, पारम्, पनीपदीति, मार्तण्डवन्, रोदस्योः, दुरितध्वान्तानि, अपनेनयीति, सः, वाजिलक्ष्मा, जिनः, मोक्षस्य, उपरि, वः धियम्, जेजयीतु ॥

वृत्तिः – श्रीभवम्–भवत्युत्पद्यतेऽत्रे ति भव उत्पत्तिस्थानम् श्रिया लक्ष्म्या भवः श्रीभवस्तन्तथा, श्रीदातारमित्यर्थः। श्रीसम्भवम्–श्रीसम्भवनामानं जिनेश्वरम्। स्तोतुम्–भक्त्या शौर्य्यवीर्य्यौदार्य्यगाम्भीर्य्य–केवलित्वादिगुणान् वर्णयितुम्। रचितैरितिशेषः। नूयते स्तूयते एभिरिति नवनानि स्तुतयस्तैस्तथा, महात्मभिः स्वयं वा कृतैः गुणादिवर्णनात्मकपद्यैः सुपनीपनीति–सु–सम्यक् पुनः पुनरतिशयेन वा पनायतीति सुपूर्वकात् पन्धातोर्यङि लुब्द्वित्वयोः सतोः पपन् इत्यवस्थायाम् न्यागमे पनीपत् इतिजाते वर्तमानायां तिवि "यङ्तुरुस्तोर्बहुलम्"-७।३।९४॥ इत्यनेन ईति पनीपनीति तोष्टवीति, यद्यप्यत्र न्यागमो न भवति, अविद्यमानात्, अदुपान्त्येभ्योऽनुनासिकान्तेभ्यो मान्तस्यैव विधानात्, एवञ्च पम्पनीतीत्येव साधु, तथापि शिष्टप्रयोगत्वात्कथञ्चित् समाधेयः। जिन ! हे जिनेश्वर ! ते–भवतः। माहात्म्यात्–महिम्नः। सः पम्पनिता। भवाम्भोनिधेः–अम्भांसि जलानि निधीयन्ते संस्थाप्यन्तेऽत्रेति अम्भोनिधिः समुद्रः, भवः संसार एवाम्भोनिधिः भवाम्भोनिधिस्तस्य तथा, संसारसागरस्येत्यर्थः। पारम्–परं तीरम्। पनीपदीति–पुनः पुनरतिशयेन वा पद्यते इति पद्धातोर्यङि लुब्द्वित्वयोः सतोः पपदित्यवस्थायाम् "वञ्चस्रंस" ।४।१।५०॥ इति न्यागमे पनीपदिति जाते

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

वर्तमानायां तिवि 'यङ्‌तुरुस्तु'–४।३।६४।। इति ईति पनीपदीति, प्रजङ्गमीति, यश्चेत्यनुषज्यते । मार्तण्डवत्–सूर्य्यवत् । रोदस्योः–द्यावापृथिव्योः । दुरितध्वान्तानि–दुरितानि ध्वान्तानि तिमिराणीव, **सूर्य्यपक्षे** दुरितानीव ध्वान्तानि दुष्कृततमांसि । यथा सूर्य्यो ध्वान्तसमुदयस्तन्तथा स दुरितवृन्दमित्यर्थः । अपनेनयीति–पुनः पुनरतिशयेन वा अपनयतीति अपपूर्वकाद् नी धातोर्यङि,लुब्द्वित्वयोः सतोर्द्वित्वपूर्वभागस्य ह्रस्वत्वे च जाते अपनिनी 'इत्यवस्थायां गुणे अपनेनी' इति जाते वर्तमानायां तिवि, ईदागमे 'नामिनो गुणो' ४।३।४।। इति गुणे 'एदैतोऽयाय:' १।२।२३।। इत्ययादेशे अपनेनयीति दूरीचरीकरीति । सः–एतादृशः । वाजिलक्ष्मा–वाजी अश्वो लक्ष्म चिह्नं लाञ्छनं यस्य स तथा अश्वलाञ्छन इत्यर्थः । श्रीसम्भवः, जिनः जिनेश्वरः । वः–युष्माकम् । धियम्–बुद्धिम् । 'बुद्धिर्मनीषा धिषणा धीः प्रज्ञा शेमुषीमति **रित्यमरः** । मोक्षस्य–मुक्तेः, कैवल्यस्येत्यर्थः । उपरि–विषये । जेजयीतु–पुनःपुनरतिशयेन वा जयत्विति जिधातोर्यङि, लुब्द्वित्वगुणेषु सत्सु 'जेजि' इत्यवस्थायांम् आशिषि तुवि, ईदागमे गुणायादेशयोः-सतोः जेजयीतु–उच्चरीकृषीतु । रूपकानुप्राणितोपमालङ्कारः ।। 'रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे' इति सा०द० ।।३।।

द्वेधारीनभिदादयीति निजकांस्त्वन्नाम शस्त्रैस्त्रिधा,
धूपाद्यानभिदादयीति यं गुरून् यो धूपसारादिवत् ।
पूजायै परिदादयीति पुरतस्ते भोग्यभोगांश्च यः,
स ब्रह्मोपरि दादयीतु खलु तान् श्रीसांवरेयः सुखैः ।।४।।

अन्वयः – यः, त्रिधा, त्वन्नामशस्त्रैः, निजकान्, द्वेधा, अरीन्, अभिदयीति, यश्च, धूपसारादिवत्, धूपाद्यान्, अगुरून्, अभिदादयीति, पूजायै, ते, पुरतः भोग्यभोगान्, परिदादयीति, सः, श्रीसांवरेयः, खलु, सुखैः, तान्, ब्रह्मोपरि, दादयीतु ।।

वृत्तिः –यः–यत्प्रकारः । त्रिधा–त्रिभ्यः प्रकारेभ्य इति त्रिधा स्मरणकीर्तनश्रवणरूपत्रिप्रकारैरिति यावत् । त्वन्नामशस्त्रैः–तव भवतो नामाभिधानम् त्वन्नाम तदेव शस्त्रमस्त्रम्, त्वन्नामशस्त्रम् तैस्तथा भवदीयनामायुधैरित्यर्थः । निजकान् निजा आत्मीया एव निजकास्तांस्तथा । स्वार्थे कः प्रत्ययः । द्वेधा–आन्तरबाह्यभेदाद् द्विप्रकारान् । अरीन्–शत्रून् अभिदादयीति–पुनःपुनरतिशयेन वा अभिदयते

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

इति अभिपूर्वकाद् दद् धातोः हिंसार्थकाद्यङि लुब्द्वित्वात्वेषु सत्सु अभिदादय् इत्यबस्थायां वर्तमानायां तिवि ईत्वे अभिदादयीति–अभिजेघ्नयीति । धूपसारा–दिवत्–धूपः सारो यस्य स तथा, सारो धूप इत्यर्थः, सरलद्रुः, तद्वत्, यथा सरल-द्रुमंस्वल्पपरिश्रमेणैव चेच्छिद्यते तथा चेच्छिदीतीत्यर्थः । यश्चेत्यनुषज्यते । धूपाद्यान्–यक्षकर्दमादिप्रमुखान् । अगुरून्–कालागुरूंश्च । यद्वा--अगुरुप्रमुखान् धूपादीनित्यर्थः । अभिदादयीति--पुनः पुनरतिशयेन वा दयते ददातीति अभिदा-दयीति, अभिदादयीतीत्यर्थः । प्रक्रियाऽनुपदमुक्तैव । तथा ये, ते--तव । पुरतः-अग्रे । पूजायै--अर्चासम्पत्त्यै । भोग्यभोगान्--भोग्यान्--उपभोग्यान् भोज्यभिन्नानु-पलक्षणत्वाद भोज्यांश्च भोगान् मिष्टान्नादिनैवेद्यान् । परिदादयीति--पुनःपुन-रतिशयेन वा परिदयते इति परिदादयीति--परिमिवेविदीति, पुनःपुनर्भृशं वा समर्पयति । तान्--तादृशान् भक्तजनान् । सः--प्रसिद्धः । श्रीसांवरेयः--सम्वरस्य स्त्री सम्वरी तस्या अपत्यं साम्वरेयः श्रीअभिनन्दनः । सुखैः--सुखपूर्वकम् । ब्रह्मोपरि--ब्रह्मणि मुक्तौ । दादयीतु खलु--निश्चयेन दादयीतु । श्रीअभिनन्दनजिनो-पासका मुक्ति लभन्ते इत्यर्थः । अत्र अभिदादयीति यगुरूनित्यत्र "इवर्णादेरस्वे स्वरे यवरलम्" १।३।२१।। इत्यत्रेवर्णादेरिति पञ्चम्यन्ततया व्याख्याय यागमो बोध्यः । रूपकोपमयोस्तिलतण्डुलवत् संसृष्टिः ।।४।।

सर्वे मोमुषतीश ! मेऽद्य रिपवो जात्याद्यलक्ष्मीं प्रभौ,
प्राग् विज्ञापयितुं जगाम पदयोः क्रौञ्चोऽङ्कदम्भात् किल ।
यस्यापोपुषतीह माम तिशयाश्चित्प्राप्तिसम्पत्तिभिः,
स श्रीमानभिदादयीतु सुमतिः शैवं पदं मेघभूः ।।५।।

अन्वयः — ईश ! सर्वे रिपवः, अद्य, मे, जात्याद्यलक्ष्मीम्, मोमुषति, प्राक्, प्रभौ, विज्ञापयितुम्, क्रौञ्चः, यस्य, पदयोः, अङ्कदम्भात्, जगाम, किल, इह, अतिशयाः, माम्, चित्प्राप्तिसम्पत्तिभिः, आपोपुषति, सः, मेघभूः, श्रीमान्, सुमतिः, शैवम्, पदम्, अभिदादयीतु ।।

वृत्तिः — ईश ! स्वामिन् ! सर्व--निखिलाः । रिपवः--शत्रवः । अद्य-साम्प्रतम् । मे-मम । जात्याद्यलक्ष्मीम्--जात्या जन्मना स्वाभाविकी या आद्या प्राथमिकी लक्ष्मीः शोभा ताम्, अकृत्रिमोत्कृष्टशोभाम् । मोमुषति--पुनःपुनरति-शयेन वा मुष्णन्तीति मुष्धातोर्यङि लुब्द्वित्वगुणेषु सत्सु मोमुष् इत्यवस्था

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

वर्तमानायामन्तिप्रत्यये नलोपे च मोमुषति चोचोरति, इति शेषः । प्राक्–पुरा । प्रभौ–जिनेश्वरे । विज्ञापयितुम्–निवेदयितुम् । कौञ्चः तन्नामा पक्षिविशेषः । यस्य–जिनस्य । पदयोः चरणयोः–शरणे इत्यर्थः । अङ्कदम्भात्–अङ्कस्य केतु-चिह्नस्य दम्भो व्याजोऽङ्कदम्भस्तस्मात्तथा, जगाम--ययौ, गतवानिति यावत् । किलेति निश्चये । तथेति शेषः । यस्येत्यनुषज्यते । इह-अत्र, अतिशयाः--सहोत्था देवकृता वाग्गताश्च गुणविशेषाः । माम्--मा । चित्प्राप्तिसम्पत्तिभिः-चितां ज्ञानानां प्राप्तिरेव सम्पत्तिस्ताभिः । आपोपुषति--पुनःपुनरतिशयेन आवृष्णन्तीति आङ्पूर्वकात्पुष् धातोर्यङि लुग्द्वित्वगुणेषु सत्सु आपोपुष् इत्यवस्थायां वर्तमानायामन्तिप्रत्यये नलोपे आपोपुषति--आवरीभ्रति । सः–तादृशः । मेघभूः–मेघभूपतिसूनुः । श्रीमान्–श्रीलः । सुमतिः–तदाख्यो जिनेश्वरः । शैवम्–शिवम्–मोक्षस्तस्येदं शैवम् मोक्षसम्बन्धीत्यर्थः । पदम्–स्थानम् । अभिदादयीतु–पुनःपुनरतिशयेन वा दयतामिति दानार्थदा–धातोरभिपूर्वाद्यङि लुब्द्वित्वात्वेषु सत्सु अभिदादय् इत्यवस्थामाम्–प्रार्थनायां तुवि प्रत्यये ईत्वे, अभिदादयीतु–अभि–ददीतु । अत्र क्रौञ्चस्य तथा विज्ञापनासम्बन्धेऽप्युक्ते रतिशयोक्तिः, सा चाङ्क-दम्भादित्यपह्नुत्या सङ्कीर्य्यते ।।५।।

योग्यस्तेऽभिसरीस्मरीति यभिधां पद्मप्रभो स्वे मनः–
पद्मान्तेऽभिसरीसरीति पदवीं शैवीं समश्रेयसीम् ।
सौसीमेय ! मरीमरीति महता कृत्येन ते भेकवत्,
प्राणी सैष दरीधरीतु कमलां सौरीं विभोर्वैभवात् ।।६।।

अन्वयः – पद्मप्रभो ! योग्यः, स्वे मनःपद्मान्ते, ते, अभिधाम् । अभि–रीस्मरीति, समश्रेयसीम्, शैवीम् पदवीम्, अभिसरीसरीति, सौसीमेय ! महता त्येन, भेकवत्, मरीमरीति, सैषः प्राणी, ते, विभोः वैभवात्, सौरीम् कमलाम् ीधरीतु !!

वृत्तिः – पद्मप्रभो ! हे पद्मप्रभाख्यजिनेश्वर ! य इत्याक्षिप्यते, योग्यः–यः । स्वे–स्वकीये । मनःपद्मान्ते–मनश्चित्तमन्तःकरणमिति यावत् पद्मं लमि व मनःपद्मं तस्यान्ते तदभ्यन्तरे, मनसीत्यर्थः । ते–तव । अभिधाम् नाम भिसरीसरीति–पुनः पुनरतिशयेन वा स्मरतीति अभिपूर्वात् स्मृधातोर्यङि पि, द्वित्वे, 'व्यञ्जनस्यानादेर्लुक्'-४।१।४४।। इति मलुकि 'ऋतोऽत्'–४।१।३८।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

वृत्तिः – असुरसुरगणैः–असुरा दानवाश्च सुरा देवाश्च असुरसुराः, तेषां गणाः समूहास्तैस्तथा, सर्वैः सुरैरसुरैश्चेत्यर्थः । 'संघाते प्रकरौघवार–निकरव्यूहाः समूहश्च यः कूटं मण्डलचक्रवालपटलस्तोमा गणः" ६।४६।। **इत्यभिधानचिन्तामणिः ।** अत्र यद्यपि द्वन्द्वेऽल्पस्वरत्वाद् अभ्यर्हितत्वाच्च सुरशब्दस्यव प्राक् प्रयोगो युक्तः, व्यवहारोऽपि तथैव, तथापि पूर्व निपातप्रकरणस्यानित्यत्वात् समाधेयम् । यैरिति परस्थतच्छद्ववला–दाक्षिप्यते, यत्तदोर्नित्यसम्वन्धात् । ते–तव । पराः–उत्कृष्टाः । गुणकणाः-गुणानां शौर्य्यवीर्य्यौदार्य्यकेवलित्वादीनां कणा लवाः गुणकणाः, अपि । शाशंस्यन्ते–पुनः पुनरतिशयेन वा शंस्यन्ते स्तूयन्ते इति शंस्धातोर्यङि लुपि द्वित्वे अनादेर्लुकि, आत्वे, शाशंस् इत्यवस्थायां कर्मणि वर्तमानायामन्ते प्रत्यये क्ये "लुगस्यादेत्यपदे" २।१।११३।। इत्यनेनाकारस्य लुकि शाशंस्यन्ते तोष्टूयन्ते । तैः–तादृशैः सुरासुरगणैः । तव–ते भवत इति यावत् । बलात् प्रभावात् । पराः–वलवन्तः । यद्वा परा इत्युपसर्गः । द्विविधरिपवः–द्विविधा आभ्यन्तरा वाह्याश्च द्विप्रकारा रिपवः शत्रवः कामक्रोधादयः । शाशंस्यन्ते–हिंसार्थात् शंस् धातोर्यङि लुपि कर्मणि शाशंस्यन्ते । प्रक्रिया तूक्तैव जङ्घन्यन्ते । तथा, यः–यादृशो जनः । विरजसा विगतं रजो दुरितं यतस्तेन शुद्धेनेत्यर्थः । विविधतपसा–विविधमनेकञ्च तत्तपस्तपस्या विविधतपस्तेन तथा, अनेकप्रकारकोपवासादिव्रतेनेत्यर्थः । अङ्गम्–शरीरम्–चनीस्कन्दीति–पुनः पुनरतिशयेन वा स्कन्दति शोषयतीति स्कन्द धातोर्यङि लुपि द्वित्वे, अनादिलुगपवादत्वात् "अघोषे शिटः" ४।१।४५।। इति शिटो लुकि "कङश्चञ्" ४।१।४६।। इति चत्वे "कञ्चस्रन्सध्वंस" ४।१।५०।। इत्यादिना पूर्वस्य न्यन्तत्वे चनीस्कन्द् इत्यवस्थायां वर्तमानायां तिवि ईदागमे चनीस्कन्दीति–विशोशोषीति । इन्दुध्वज जिनपते !–इन्दुश्चन्द्रो ध्वजश्चिह्नं केतुर्लाञ्छनं वा यस्य स चासौ जिनपतिर्जिनेश्वर इन्दुध्वज जिनपतिस्तदामन्त्रणे । सः–तादृशो जनः । अक्षयपदम्–अक्षयमविनाशि च तत्पदमास्पदमक्षयपदम् शाश्वतं मोक्षपदमित्यर्थः । चनी–स्कन्दीतु–पुनः पुनरतिशयेन वा स्कन्दतु गच्छत्विति गत्यर्थात् स्कन्द्धातो–र्यङि लुकि प्रार्थनायां चनीस्कन्दीतु–जङ्गमीतु । तव गुणकणस्यापि स्तुतिः शत्रून् नाशयति तदेव च तपःपूर्वकं मोक्षमपि ददाति किं पुनर्निखिलगुण–स्तवनमिति भावः । अर्थापत्त्यलङ्कारः ।।८।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

वरीवृह्यन्ते यैर्नुतिकृति तवाग्रे नरगजै-
र्वरीवृह्यन्ते ते हरिहरिरसैर्दीपशिखवत् ।
परीप्रीयन्ते यैः सुचरणगुणास्ते शिवसुखैः,
परीप्रीयन्ते श्रीसुविधिजिनपः सोऽस्तु शिवदः ॥९॥

अन्वयः — यैः, नरगजैः । तवाग्रे, नुतिकृति, हरिहरि-रसैः, वरीवृह्यन्ते, ते, दीपशिखवत्, वरीवृह्यन्ते, यैः, सुचरणगुणाः, परीप्रीयन्ते, ते, शिवसुखैः, परीप्रीयन्ते, सः, श्रीसुविधिजिनपः, शिवदः, अस्तु ॥

वृत्तिः — यैः—यत्प्रकारैः । नरगजैः—नरा मनुष्या गजा हस्तिन इवेति नरगजास्तैस्तथा नरश्रेष्ठैरित्यर्थः । स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः । सिंहशार्दूलनागाद्यास्तल्लजश्च मतल्लिका ॥ मचर्चिका प्रकाण्डौ द्वौ प्रशस्यार्थप्रकाशकाः" ६।७६॥ **इत्यभिधानचिन्तामणिः** । तव-भवतः । अग्रे—पुरतः । पुरोभागे इति यावत् । नुतिकृति—करणं कृत् भावे क्विप् वाहुलकात्, नुतेः स्तुतेः कृत् क्रिया नुतिकृत् तत्र, स्तुतिकर्मणि । हरि-हरि-रसैः—हरिर्विष्णुश्च हरिरिन्द्रश्च तयो रसा अनुरागा इव रसा हरिहरि-रसास्तैस्तथा, विष्णुशक्रानुराग-तुल्यानुरागैः । वरीवृह्यन्ते-पुनः पुनरतिशयेन वा वृह्यन्ते इति वृह्धातोर्यङि लुपि द्वित्वे अत्वे च ववृह् इत्यवस्थायां "रीरी च लुपि" ४।१।५६॥ इति री 'अन्तादेशे वरीवृह् इत्यवस्थायां कर्मणि वर्तमानायामन्ते प्रत्यये क्ये च अलुकि वरीवृह्यन्ते—शाशब्द्यन्ते । ते तादृशा नरगजाः । दीपशिखवत्—दीपशिखतुल्यम् । यथा दीपशिखो वृद्धिमाप्तवान् तथा । वरीवृह्यन्ते—पुनः पुनरतिशयेन वृंहन्तीति वृह्धातोर्यङि द्वित्वे अत्वे ववृह्य इत्यवस्थायां "ऋमतां रीः" ४।१।४५॥ इत्यनेन री 'इत्यागमे वरीवृह्य इत्यतः वर्तमानायामन्ते प्रत्यये अलुकि वरीवृह्यन्ते—वरीवृद्धयन्ते, राज्यादि वृद्धयेति भावः । तथा यैः—यादृशैर्जनैः सुचरणगुणाः—सुचरणं, सुचारित्र्यम्, तद्रूपो गुणस्ते । परीप्रीयन्ते—पुनः पुनरतिशयेन पूर्यन्ते पाल्यन्ते इति पृ धातोर्यङि लुपि द्वित्वे अत्वे पपृ इत्यवस्थायां पूर्वस्य री इत्यागमे परीपृ इत्यवस्थायां कर्मणि वर्तमानायामन्ते विभक्तौ मध्ये क्ये "ऋतो री" ४।३।१०९॥ इति रीत्यादेशे अलुकि परीप्रीयन्ते—पापाल्यन्ते । ते, ते—तव । शिवसुखैः—मोक्षानन्दैः । परीप्रीयन्ते पुनः पुनरतिशयेन वा पूर्यन्ते इति पृधातोर्यङि लुपि द्वित्वे अत्वे पपृ इत्य-

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

वस्थायां पूर्वस्य रीह्यागमे परीपृ इत्यवस्थायाम् ऋकारस्य रीत्यादेशे कर्मणि वर्तमानायामन्ते प्रत्यये, क्येऽकारस्य लुकि परीप्रीयन्ते वरीभ्रीयन्ते । तव मोक्षसुखैस्ते परिपूर्णा भवन्तीत्यर्थः, चारित्र्यवते मोक्षसुखं प्रदाय सर्वथाऽनुगृह्णासीति भावः । सः–त्वम् । सुविधिजिनपः–श्रीसुविधिनामा जिनेश्वरः । शिवदः–शिवं मोक्षं ददातीति शिवदः–मोक्षप्रद इत्यर्थः । अस्तु–भवतु । अत्र अन्यरसस्यान्यत्राऽसम्भवात् रस इव रस इति सादृश्याक्षेपान्निदर्शनानामालङ्कारः । दीपशिखवदित्युपमा च ॥९॥

प्रणेनिन्द्यन्ते यैः खलु तव पुरः स्वा अघभराः,
प्रणानन्द्यन्ते ते सुरवरसुखैर्निर्वृतिपुषैः ।
वितन्तन्यन्ते यैः सुनवनवनैः शक् तव गुणाः,
प्रसेसिध्यन्ते ते जिनवदचले शीतलपदे ॥१०॥

अन्वयः – यैः, तव, पुरः, स्वाः, अघभराः, प्रणेनिन्द्यन्ते, खलु, ते, निर्वृतिपुषैः, सुरवरसुखैः, प्रणानन्द्यन्ते, शक् ! तव, गुणाः, यैः, सुनवनवनैः, वितन्तन्यन्ते, ते, अचले, शीतलपदे, जिनवत्, प्रसेसिध्यन्ते ॥१०॥

वृत्तिः – यैः–यादृशैर्नरैः । तव–ते । पुरः–अग्रे । स्वाः–निजाः । अघभराः–अघानां पापानां भरा अतिशया अघभरास्तैस्तथा, पापौघा इत्यर्थः । प्रणेनिन्द्यन्ते–पुनः पुनरतिशयेन वा प्रणिन्द्यन्ते इति प्रपूर्वादुदितो-नान्तान्निन्द धातोर्यङि लुपि द्वित्वे गुणे प्रनेनिन्द् इत्यवस्थायां कर्मणि वर्तमानायामन्ते प्रत्यये क्ये अलुकि 'अदुरुपसर्गान्तरो'' २।३।७७॥ इति णत्वे प्रणेनिन्द्यन्ते–उपचोक्रुश्यन्ते । ते–तादृशा नराः । निर्वृतिपुषैः–पुष्यन्तीति-पुषाः, क प्रत्ययः, निर्वृतेर्मोक्षसुखस्य पुषाः पोषका निर्वृतिपुषास्तैस्तथा । ये मोक्षायोद्युञ्जते न तु बन्धनाय तैरित्यर्थः । सुरवरसुखैः–सुरवराः सुर-श्रेष्ठास्तेषां सुखैः–शर्मभिः । सुरवरसुखतुल्यसुखैरित्यर्थः । प्रणानन्द्यन्ते–पुनः पुनरतिशयेन वा नन्दन्तीति प्रपूर्वाण्णोपदेशादुदितो नान्तान्नन्द्–धातोर्यङि द्वित्वे पूर्वस्यात्वे प्रनानन्द्य इत्यवस्थायां वर्तमानायामन्ते प्रत्यये अकारस्य लुकि णत्वे प्रणानन्द्यन्ते, प्रमोमुद्यन्ते । तथा, शक् ! शक्नोतीति क्विप् शक् तदामन्त्रणे हे शक् ! समर्थ ! तव–ते । गुणाः–दयाचारित्र्या–दयः । यैः–यादृशैर्नरैः । सुनवनवनैः–सुशोभनैर्नवैरपूर्वैर्नवनैः स्तवनैः

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

कृत्वा, वितन्तन्यन्ते–पुनः पुनरतिशयेन वा वितायन्ते इति विपूर्वात् तन् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे "मुरतोऽनुनासिकस्य"४।१।५१।। इति पूर्वस्य मान्तत्वे "तौ मुमौ व्यञ्जने स्वौ"–१।३।१४।। इत्यनेन स्वानुनासिकत्वे वितन्तनि–त्यवस्थायां कर्मणि वर्तमानायामन्ते प्रत्यये क्ये अलुकि "तनः क्ये"–४।२।६३।। इत्यात्वविकल्पात् वितन्तन्यन्ते–वितरीस्तीर्यन्ते । ते–तादृशा जनाः । अचले–न चलमचलम् तस्मिन् स्थायिनि, अविनश्वरे इत्यर्थः । शीतलपदे–शीतले सर्वोपाधिरहितत्वात् शान्ते पदे स्थाने मोक्षे इत्यर्थः । श्लेषमहिम्ना शीतलस्य तदाख्यतीर्थङ्करस्य पदे स्थाने' इत्यप्यूह्यम् । जिनवत्–जिन इव । जिना यथा मोक्षं गच्छन्ति तथा । प्रसेसिध्यन्ते–पुनः पुनरतिशयेन वा प्रसेधन्तीति प्रपूर्वात् सिध् धातोर्यङि लुकि द्वित्वे पूर्वस्य गुणे प्रसेसिध्य इत्यवस्थायां वर्तमानायामन्ते प्रत्यये अलुकि "स्थासेनिसेध" २।३।४०।। इति प्राप्तषत्वस्य "गतौ सेधः" २।३।६१।। इति निषेधात् प्रसे–सिध्यन्ते प्रजङ्गम्यन्ते । श्रीशीतलजिनस्तुतिकर्ता श्रीशीतलपदं मोक्षं गच्छतीति भावः ।।१०।।

श्रीश्रेयांसजिनेन्द्रचन्द्रविभवः शेश्रीयते यैर्मुदा,
श्रेयोऽनन्तकला दरिध्रति हिते निःश्रेयसः सम्भवः ।
तेऽन्ते पञ्चपदीं सरिस्स्रति तु ते शैवीं रमां यान्ति ते,
ते श्रीविष्णुभवा विदादतु पुनस्ते सम्पदामास्पदम् ।।११।।

अन्वयः –यैः, श्री श्रेयांसजिनेन्द्रचन्द्रविभवः, मुदा, शेश्रीयते, ते, हि, निःश्रेयसः, सम्भवाः, श्रेयोऽनन्तकलाः, दरिध्रति, ये, अन्ते, ते, पञ्चपदीम्, सरिस्स्रति, ते, तु, शैवीम्, रमाम्, यान्ति, ते, श्रीविष्णुभवाः, पुनः, ते, सम्पदाम्, आस्पदम्, विदादतु ।।११।।

वृत्तिः – यैः, यादृशैर्जनैः । श्रीश्रेयांस–जिनेन्द्रचन्द्रविभवः जिनेन्द्रो जिनेश्वरश्चन्द्रश्चेति जिनेन्द्रचन्द्रः, जिनेन्द्रश्रेष्ठः श्रीश्रेयांसनामा जिनेन्द्र–चन्द्रः श्रीश्रेयांसजिनेन्द्रचन्द्रः तस्य विभव ऐश्वर्य्यं सर्वोत्कृष्टदया–चारि–त्र्यादि । मुदा हर्षेण । शेश्रीयते–पुनः पुनरतिशयेन वा श्रीयते इति श्रिधातोर्यङि लुपि द्वित्वे अनादि लुपि पूर्वस्य गुणे शेश्रि इत्यवस्थायां कर्मणि वर्तमानायां न्ते प्रत्यये क्ये "दीर्घश्च्वियङ्यक् क्येषु च" ४।३।१०८। इति

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S.   Jun Gun Aaradhak Trust

दीर्घे शेश्रियते सेसेव्यते । ते–तादृशा जनाः । निश्रेयसः–मोक्षात् । संभवाः–समुद्भवा उत्पन्ना, इति यावत् । श्रेयोऽनन्तकलाः श्रेयसां कल्याणानां या अनन्ता अपरिमिताः कलाः गुणास्तास्तथा । दरिध्रति–पुनः पुनरतिशयेन वा धरन्तीति धृधातोर्यङि लुपि द्वित्वे अत्वे पूर्वस्य रि इत्यागमे दरिधृ इत्यवस्थायां वर्तमानायामन्ति प्रत्यये 'अन्तो नो लुक्' ४।२।९६।। इति न लुकि-"इवर्णादिरस्वे" १।२।२१।। इति रादेशे दरिध्रति–बरिभ्रति । हि निश्चये । "हि हेतावववधारणे" **इत्यभिधानचिन्तामणिः** । ये यादृशा–जनाः । अन्ते–समीपे अन्तकाले वा । ते–तव । पञ्चपदीम् पञ्चावस्थाम्, पञ्चकल्याणकम्, पञ्चनमस्कारमन्त्रं वा । सरिस्म्रतिं–पुनः पुनरतिशयेन वा स्मरन्तीति स्मृधातोर्यङः लुपि द्वित्वे अनादिलोपे अत्वे पूर्वस्य रि इत्यन्यागमे सरिस्मृ इत्यवस्थायाम् वर्तमानायामन्ते प्रत्यये न लुकि रेफादेशे सरिस्म्रति, चेचिन्तति । ते तु तादृशजनास्तु । शैवीम्–शिवं मोक्षस्तत्सम्वन्धिनीम् । रमाम् लक्ष्मीम् । यान्ति प्राप्नुवन्ति, आदरातिशये वहुवचनम् । ते–एतादृशाः । श्रीविष्णुभवाः–श्रीविष्णुसूनवः । श्रीश्रेयांस–नाथाः । पुनरिति वाक्यालङ्कारे ते–तुभ्यञ्च । सम्पदाम्–लक्ष्मीणाम् । आस्पदम्–स्थानमाकरमिति यावत् । विददातु–पुनः पुनरतिशयेन वा ददत्विति विपूर्वाद् दा धातोर्यङि लुपि पूर्वस्य ह्रस्वत्वे आत्वे च विदादा इत्यवस्थायां वर्तमानायामन्तु प्रत्यये न लुकि "श्नश्चातः"– ४।२।९६।। इत्याल्लुकि विदादतु–विदाददतु । "ते श्री विष्णुभवा विदाददतु नस्ते" इत्येवं पाठपक्षे तु–नः, अस्मभ्यं तुभ्यञ्चेतयर्थो वोध्यः ।।११।।

सम्मामान्य सुमैः प्रणोनुवति ये श्रीवासुपूज्यं जिनं,
रोहिण्यादिकवत् प्रबाभजति ते शैवीः श्रियोऽर्चाबलात् ।
पर्यन्या इव दाददत्यतिरसैर्धान्यानि सर्वाणि ते,
मार्तण्डा इव विश्वभव्यकमलान् बोबोधयन्त्यन्वहम् ।।१२।।

अन्वयः – ये, श्रीवासुपूज्यम्, जिनम्, सुमैः, सम्मामान्य, प्रणोनुवति, ते, अर्चाबलात्, रोहिण्यादिकवत्, शैवीः, श्रियः, प्रवाभजति, ते, पर्यन्या इव, अतिरसैः, सर्वाणि, धान्यानि, दाददति, मार्तण्डा इव, अन्वहम् विश्वभव्य--कमलान्, वोवोधयन्ति ।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

वृत्तिः – ये–यादृशा जनाः । श्रीवासुपूज्यम्–वसुपूज्यस्यापत्यं पुमान् वासुपूज्यस्तन्तथा । जिनम्–जिनेश्वरम्, सुमैः–पुष्पैः । सम्मामान्य–सम्पूर्वान्माङ् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे ह्रस्वत्वे आत्वे सम्मामान् इत्यवस्थायां यपि सम्मामान्य सम्पोपूज्य प्रणोनुवति पुनः पुनरतिशयेन वा प्रणुवन्तीति प्रपूर्वाद् नु धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य गुणे णत्वे च प्रणोनु इत्यवस्थायां वर्तमानायामन्ति प्रत्यये न लुकि "धातोरवर्णो वर्णस्येयुव्"२।१।५०।। इत्युवि प्रणोनुवति–प्रतोष्टुवति, ते–तादृशा जनाः । अर्चावलात्–पूजाप्रभावात् । रोहिण्यादिकवत्–रोहिणी अदिर्येषान्ते रोहिण्यादिकास्त इव, रोहिण्यादिका यथाऽऽर्चावलात् मुक्तिमधिगता, तथा । शैवीः शिवस्य मोक्षस्येमाः शैवीः, मोक्षसम्बन्धिनीः । श्रियः–लक्ष्मीः । प्रवाभजति–पुनः पुनरतिशयेन वा भजन्तीति प्रपूर्वाद् भज् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे "द्वितीयतुर्य्ययोः पूर्वौ" ४।१।४२।। इति तृतीये आत्वे च प्रवाभज् इत्यवस्थायां वर्तमानायामन्ति प्रत्यये नलुकि प्रवाभजति–सेषेवति । आशेश्रियतीति यावत् । किञ्च, ते–तादृशा मानवाः पर्यन्याः मेघा इव । अतिरसैः–प्रचुरानुरागैः, रस्यते इति रसः शब्दः, प्रचुरसाधूपदेशैरिति वार्थः । मेघ–पक्षे–प्रचुर–जलैरित्यर्थः । सर्वाणि समग्राणि धान्यानि–धान्यपदस्योपचारात् सम्पदः । मेघपक्षे शस्यानि । दाददति–पुनः पुनरतिशयेन वा ददन्ते इति दद् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे आत्वे दादद् इत्यवस्थायां वर्तमानायामन्ति प्रत्यये न लुकि दाददति–दादति, तथा, मार्तण्डा इव आदित्या इव । विश्वभव्यकमलान्–विश्वे विश्वान् वा भव्याः कमलानि इव तान्, सूर्य्यपक्षे विश्वे भव्यानि कमलानि, लिङ्गव्यत्ययेनान्वयः । अन्वहम्–अहरहः । वोवोधयन्ति–पुनः पुनरतिशयेन वा वोधयन्तीति वुध धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य गुणे वोवुध इत्यवस्थायां णिचि "लघोरुपान्त्यस्य" ४।३।४।। इति गुणे वोवोधि इत्यवस्थायां वर्तमानायामन्ति प्रत्यये मध्ये शवि "नामिनो गुणो" ४।२।४।। इति गुणे अलुकि वोवोधयन्ति–शेशिक्षयन्ति । सूर्य्यपक्षे विचाकासयन्ति । रूपकश्लेषोपमासमुच्चयातिशयोक्तीनां सङ्करोऽलङ्कारः ।।१२।।

ये नैर्ग्रन्थ्यपदं सरीसृपति ते जैनेन्द्रशुद्धव्रतैः,
स्वर्गं सेषिधतीश ! पुण्यविभवैस्त्वत्प्राग्भवो मर्त्यवत् ।
देवेन्द्रैः कृतवर्मपुत्र ! नवनैर्वावन्द्यते यस्त्रिधा,
स श्रेयो विमलो ददातु विमलो मुक्तेः श्रियो नोऽनिशम् ।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

अन्वयः – ये, जैनेन्द्रशुद्धव्रतैः, नैर्ग्रन्थ्यपदम् सरीसृपति, ईश ! ते, पुण्यविभवैः, त्वत्प्राग्भवो मर्त्यवत्, स्वर्गम्, सेषिधति, कृतवर्मपुत्र ! यः, देवेन्द्रैः, नवनैः, त्रिधा, वावन्द्यते सः, श्रेयोविमलः, विमलः, नः, अनिशम्, मुक्तेः, श्रियः, ददातु ।।

वृत्तिः – ये–यादृशा जनाः । जैनेन्द्रशुद्धव्रतैः–जैनेन्द्राणां जिनेश्वराणां यानि शुद्धानि शास्त्राचारादिपरिष्कृतानि व्रतानि तपांसि तैः । नैर्ग्रन्थ्य-पदम्–ग्रन्थिर्बन्धनन्ततो निर्गतो निर्ग्रन्थिमुक्तस्तस्य भावो नैर्ग्रन्थ्यम् तस्य पदम्-मुक्तिस्तान्तथा, यद्वा निर्ग्रन्थो भिक्षुस्तस्य भावो नैर्ग्रन्थ्यम्, तस्य पदं साधुत्वमित्यर्थः । सरीसृपति--पुनः पुनरतिशयेन वा सर्पन्तीति सृपधातो--र्यङि लुकि द्वित्वे अत्वे पूर्वस्य री इत्यागमे सरीसृप् इत्यवस्थायां वर्त--मानायामन्ति प्रत्यये न लुकि सरीसृपति--जङ्गमति । ईश ! प्रभो ! । ते--व्रतादिना मोक्षपदानुसर्तारः । पुण्यविभवैः पुण्यस्य सुकृतस्य विभवाः प्रभा-वास्तैस्तथा । त्वत्प्राग्भवः--त्वं प्राग्भवो यस्य सः, प्राग्भवे त्वं सः, अत्र भवे स त्वमित्यर्थः । मर्त्यवत्–मरणधर्मा मर्त्यस्तद्वत्, यथा त्वत्प्राग्भवो मर्त्या व्रतादिपुण्यप्रतापैः स्वर्गं गतास्तद्वत् सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वाद् वृत्तिः । सहस्रारकल्पे महापुरीनगर्य्यां महासेनो नृपः सर्वगुरोः पार्श्वे दीक्षां लात्वा व्रतादिपुण्यप्रभावात् स्वर्गं जगामेत्यागमः । स्वर्गम्--सुरलोकम् । सेषिधति–पुनः पुनरतिशयेन वा सेधन्तीति सिध् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य गुणे सेषिध् इत्यवस्थायां वर्तमानायामन्ति प्रत्यये न लुकि सेषिधति जङ्गमति । यः यादृशो भवान् । देवेन्द्रैः सुरेन्द्रैः । नवनैः–स्तवनैः–स्तुति-पूर्वकमित्यर्थः । त्रिधा--मनोवाक्कायैः । वावन्द्यते पुनः पुनरतिशयेन वा वन्द्यते इति उदित्वान्नान्ताद्--वन्द्धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य आत्वे वावन्द् इत्यवस्थायां कर्मणि वर्तमानायां ते प्रत्यये मध्ये क्ये वावन्द्यते--तोष्टूयते, अभिवावद्यते वा । सः-तादृशो भवान् । श्रेयो विमलः--श्रेयोभि-रनन्तकल्याणगुणैर्विमलो निर्मलः, निर्मलानन्तकल्याणगुणवानित्यर्थः । विमलः श्रीविमलनाथनामा तीर्थपतिः । नः–अस्मभ्यम् । अनिशम्--अनार-तम् । "अनारतं त्वविरतं संसक्तं सततानिशम् । नित्यानवरताजस्रासक्ता-श्रान्तानि सन्ततम्" ६।१०७।। इत्यभिधानचिन्तामणिः । मुक्तेः--कैवल्यस्य श्रियः--लक्ष्मीः । ददातु--वितरतु ।।१३।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S.   Jun Gun Aaradhak Trust

तातक्षीति तपो–बहुप्रहरणैर्द्वेधाऽमितारातिकान्,
स श्री विष्णुकुमारवच्छिवपदं जागेति ते ध्यानतः ।
यो वाऽनन्तवदादधाति सुमनःपूजां विभोर्भिल्लवत्,
लालम्भीति सुवैभवं स समयादल्पादनन्तेशितुः ॥१४॥

अन्वयः – तपोबहुप्रहरणैः, द्वेधामितारातिकान्, तातक्षीति, सः, ते, ध्यानतः, श्रीविष्णुकुमारवत्, शिवपदम्, जागेति, यो वा, अनन्तवत्, विभोः, सुमनःपूजाम्, आदधाति, सः, भिल्लवत्, अनन्तेशितुः, अल्पात्, समयात्, सुवैभवम्, लालम्भीति ॥

वृत्तिः – तपो बहुप्रहरणैः–तपांस्येव बहुप्रहरणानि नाना नानाविधानि चायुधानि तपो बहुप्रहरणानि, तैस्तथा । य इति पुरः स इति तच्छब्दाल्लभ्यते, यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात् । द्वेधामितारातिकान्–द्वेधा द्विप्रकारा आन्तरा बाह्याश्च ये अमिता असङ्ख्याताः कुत्सिता अरातयः शत्रवोऽरातिकास्तांस्तथा । तातक्षीति–पुनः पुनरतिशयेन वा तक्ष्णोतीति तक्ष् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्यात्वे तातक्ष् इत्यवस्थायां वर्तमानायां तिवि प्रत्यये ईदागमे तातक्षीति–पुनः पुनरतिशयेन तनयति । सः–तादृशो मानवः । ते–तव । ध्यानतः–ध्यानात् । श्रीविष्णुकुमारवत्–श्रीविष्णुकुमार इव । शिवपदम्–मोक्षम् । जागेति–पुनः पुनरतिशयेन वा गाते इति गा धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य ह्रस्वत्वे "गहोर्जः" ४।१।४०॥ इति जादेशे आत्वे जागा इत्यवस्थायां वर्तमानायां तिवि प्रत्यये ईदागमे "अवर्णस्येवर्णो" १।२।६॥ इत्येदादेशे जागेति–यायेति । यः यादृशो जनः । वेति प्रकारान्तरे विभोः–प्रभोर्जिनस्येत्यर्थः । अनन्तवत् अनन्त इव । सुमनःपूजाम्-सुमनोभिः पुष्पैः पूजाऽर्चा सुमनःपूजा तान्तथा । आदधाति–विदधाति । सः तादृशो जनः । अनन्तेशितुः–अनन्तोऽनन्ताख्यश्चासावीशिता शासिता चानन्तेशिता तस्य तथा, तत्सकाशादित्यर्थः । यद्वा–अनन्त ! ईशित ! इति सम्बोधनद्वयम् । अल्पात् स्तोकात् । समयात्–कालात्, अचिरादेवेत्यर्थः । भिल्लवत्–किरात इव । सुवैभवम् सुशोभनमैश्वर्य्यम् सुसम्पदमिति यावत् । लालम्भीति–पुनः पुनरतिशयेन वा लभते इति लभ् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य आत्वे लालभ् इत्यवस्थायां वर्तमानायां तिवि प्रत्यये ईदागमे "लभः" ४।४।१०४॥ इति नागमे "म्नां धुड् वर्गे" १।३।३९। इति नकारस्य मकारे लालम्भीति–अधिजङ्गमीति ॥१४॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

त्वन्नामाविरतं बरिभ्रति मनःपद्मेषु ये पद्मवत्,
तेषां कीर्तिसुकेसरैश्च सुरभीचक्रेऽब्जवद्विष्टपम् ।
ये लालम्भति मूर्तये सुमहनं श्रीसुव्रतेयोत्सुमैः,
शक्राद्याश्च सदैव मामहति तांस्तान् धर्मनाथोऽवतात् ।।१५

अन्वयः – ये, मनःपद्मेषु, अविरतम्, पद्मवत् त्वन्नाम, बरिभ्रति, तेषाम्, कीर्तिसुकेसरैश्च, अब्जवत्, विष्टपम्, सुरभीचक्रे, श्रीसुव्रतेय ! ये, मूर्त्तये, उत्सुमैः, सुमहनम्, लालम्भति, तान्, शक्रादयः, सदैव, मामहति, तान्, धर्मनाथः, अवतात् ।।१५।।

वृत्तिः – ये–यादृशा जनाः । मनःपद्मेषु–मनश्चित्तमेव पद्मं कमलम् तेषु । अविरतम्–अविश्रान्तम् । पद्मवत्–पद्मरथनामनृपतिरिव । त्वनाम भवन्नामधेयम् । भ्रमरमिवेति ध्वनिः । वरिभ्रति–पुनः पुनरतिशयेन वा विभ्रतीति भृधातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य तृतीयत्वे रि इत्यागमे च वरिभृ इत्यवस्थायां वर्तमानायामन्ति प्रत्यये न लुकि रेफादेशे च वरिभ्रति दरिध्रति । तेषाम्–तादृशानां जनानाम् । कीर्तिसुकेसरैश्च–कीर्तयो यशां-स्येव सुकेसराः सुकिञ्जल्काः कीर्तिसुकेसरास्तैस्तथा, च–पादपूर्तौ । अब्जवत् कमलवत् । विष्टपम् भुवनम् । "स्याल्लोको विष्टपं विश्वं भुवनं जगती जगत्"– ६।१।। **इत्यभिधानचिन्तामणिः** । सुरभीचक्रे–सुरभी-कृतमेव, कुर्वन्तीति किमु वक्तव्यमिति भावः । अत एव परोक्षासङ्गतिः । श्रीसुव्रतेय ! श्रीसुव्रताया अपत्यं पुमान् श्रीसुव्रतेयस्तदामन्त्रणे । ये-यादृशा मानवाः । मूर्त्तये-भवद्बिम्बाय । उत्सुमैः-उद्बुद्धैः सम्यग् विकसितैरिति यावत् । सुमैः पुष्पैः प्रफुल्लप्रसूनैरित्यर्थः । सुमहनम्-सुपूजनम् । लालम्भति पुनः पुनरतिशयेन वा लभन्ते इति लभ् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे आत्वे लालभ् इत्यवस्थायां वर्तमानायामन्ति प्रत्यये नलुकि नान्तत्वे तस्य मादेशे लालम्भति चरीकर्ति । तान्–तादृशान् जनान् । शक्राद्याः इन्द्राद्याश्च । सदैव–सर्वदा खलु, सततमिति यावत् । मामहति–पुनः पुनरतिशयेन वा महन्तीति मह् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य आत्वे मामह् इत्यवस्थायां वर्तमानायामन्ति प्रत्यये न लुकि मामहति–पोपूजति । तान्–तादृशान् पूजकजनान् । धर्मनाथः तदाख्यो जिनेश्वरः । अवतात्–रक्षतात्, रूपको-पमयोः संसृष्टिः । किञ्च नामधारणात्पूर्वमेव जगत्सुरभीकारोन्तया-कारणात्पूर्वमेव कार्यवर्णनादतिशयोक्तिः ।।१५।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

दुष्टानिष्टभरानिहाजरिहरीद् यः सौवजन्मक्षणे,
हित्वा चाक्रिकसम्पदोऽप्यजरिगर्हीदिद्धसंविच्चयः ।
निःश्रेयःसुखमाश्रियोऽवरिवृतीद् यश्चाचिरेयः प्रभुः,
स श्रीशान्तिजिन ! स्तुतः परिपरीत्विष्टार्थकान् शाश्वतान् ॥

अन्वयः – यः, सौवजन्मक्षणे, इह, दुष्टानिष्टभरान्, अजरिहरीत्, इद्धसंविच्चयः, चाक्रिकसम्पदोऽपि, हित्वा निःश्रेयःसुखम्, अजरिगर्हीत्, यश्च, आचिरेयः, प्रभुः, आश्रियः, अवंरिवृतीत्, सः, श्रीशान्तिजिनः स्तुतः, शाश्वतान्, इष्टार्थकान्, परिपरीतु ॥१६॥

वृत्तिः – यः–यत्प्रकारो भगवान् जिनेश्वरः । सौवजन्मक्षणेः स्वस्येदं सौवं तादृशं यज्जन्मक्षणमुत्पत्तिकालस्तस्मिन् तथा । इह–अस्मिन् मर्त्यलोके । दुष्टानिष्टभरान्-दुष्टा असन्त इत्यर्थः येऽनिष्टा अकल्याणकरास्तेषां भरा अतिशयास्तान् । अजरिहरीत् पुनः पुनरतिशयेन वा अहरदिति हृधातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य हकारस्य जत्वे रि इत्यागमे जरिहृ इत्यवस्थायां ह्यस्तन्यां तिवि विभक्तौ ईदागमे गुणे च "अड्धातोरदिः" ४।४।२९।। इत्यति अजरिहरीत् अनानाशीत् । तथा इद्धसंविच्चयः–इद्धः प्रदीप्तः अविद्यादीनभिभूय शुद्धस्वरूपेणावस्थितः संविदां चितं । ज्ञानानामिति यावत् चयो राशिः समूह इति यावत् । स विशुद्धज्ञानसमुदयः सन् । चाक्रिकसम्पदः–चाक्रिकाणां चक्रवर्तिनाम्, सम्पदो लक्ष्मीश्चाक्रिकसम्पदस्तास्तथा, अपिस्तादृशसम्पदस्त्यागाशक्तत्वं प्रतिपादयति । हित्वा–सन्त्यज्य । निःश्रेयःसुखम् मोक्षसुखम् ब्रह्मानन्दमिति यावत् । अजरिगर्हीत्–पुनः पुनरतिशयेन वाऽग्रहीदिति ग्रहधातोर्यङि लुपि "ग्रहव्रश्च–" ४।१।८४।। इति य्वृति द्वित्वे पूर्वस्य अत्वे रि इत्यन्ते जरिगृह् इत्यवस्थायामद्यतन्यां तिवि मध्ये सिजि 'स्ताद्याशितो' ।४।४।३२।। इतीटि "सः सिजस्तेर्दिश्यो–" ४।३।६५।। इतीदागमे "इट ईति" ४।३।७१।। इति सिज्लोपे दीर्घे उपान्त्यस्य गुणे अटि अजरिगर्हीत्–स्व्यचरिकार्षीत् । यश्च, आचिरेयः–अचिराया अपत्यं पुमानित्याचिरेयः श्रीशान्तिजिनः । प्रभुः–समर्थः । आश्रियः–श्रियमभिव्याप्य, श्रीसमन्वित इत्यर्थः । अवरिवृतीत्–पुनः पुनरतिशयेन वा अवर्ततेति वृत् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य अत्वे रि इत्यन्ते वरिवृत् इत्यवस्थायां ह्यस्तन्यां तिवि ईदागमे

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

अटि अवरिवृतीत्–व्यबाजरिहरीत् । सः–तादृशः । श्रीशान्ति–जिनः–तदाख्यः षोडशस्तीर्थङ्करः । स्तुतः–नुतः । सन्, शाश्वतान् नित्यान् । इष्टार्थकान्–अभिलषितपदार्थान् । परीपरीतु–पुनः पुनरतिशयेन वा पिपर्त्तु इति पृ धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य अत्वे रि इत्यन्तागमे परि पृ इत्यवस्थायां पञ्चम्यां तुवि ईदागमे गुणे परीपरीतु–रारक्षीतु वरीभरीतु वा ॥१६॥

ये श्वेतातपवारणोरुचमरैर्मामान्यते यः प्रभु–
र्भव्याः पापुरतीशितुः पदमहो आरामशोभादिवत् ।
ये वा मोमुदति प्रवीक्ष्य भगवंस्ते तीर्थकृद् वैभवान्,
स श्रीकुन्थुविभुर्नतामरविभुर्मामातु सौवाः श्रियः ॥१७॥

अन्वयः – यैः, यः, प्रभुः, श्वेतातपवारणोरु–चमरैः, मामान्यते, भव्याः, आरामशोभादिवत्, ईशितुः, पदम्, पापुरति, अहो भगवन् तीर्थकृत् ! ये, ते, वैभवान्, प्रवीक्ष्य, मोमुदति, सः, नतामरविभुः, श्रीकुन्थुविभुः, सौवाः, श्रियः, मामातु ॥

वृत्तिः – यैः–यादृशैर्जनैः । यः–प्रभुः–यादृशः स्वामी । श्वेतातपवारणोरुचमरैः–आतपं सूर्य्यप्रखरकिरणसम्पर्कादिजनितसन्तापं वारयन्ति दूरीकुर्वन्तीति आतपवारणानि, श्वेतानि धवलानि आतपवारणानि छत्राणि च उरूणि महान्ति चामराणि वालव्यजनानि च श्वेतातपवारणोरुचराणि तैस्तथा । मामान्यते–पुनः पुनरतिशयेन वा मान्यते इति मान् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे ह्रस्वत्वे पूर्वस्यात्वे मामान् इत्यवस्थायां वर्तमानायान्तें प्रत्यये मध्ये क्ये मामान्यते–पोपूज्यते । ते इत्याक्षिप्यते । भव्याः मोक्षगमनयोग्याः श्राद्धाः । आरामशोभादिवत्–आरामशोभादिरिव । ईशितुः–जिनेश्वरस्य । पदम्–स्थानम्, मोक्षमित्यर्थः । पापुरति–पुनः पुनरतिशयेन वा पृणन्तीति पृ धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य ह्रस्वत्वे आत्वे च दीर्घर्कारत्वाद् दृयाद्यभावे आत्वे पापृ इत्यवस्थायां वर्तमानायामन्ति प्रत्यये नलुकि "शिदवित्–" ४।३।२०॥ इति ङित्वे "ओष्ठ्यादुर्"–४।४।११८॥ इत्युरादेशे पापुरति परिप्रति । अहो–आश्चर्यम् । भगवतो जिनवरस्य प्रभावः । भगवन्–ऐश्वर्य्यशालिन् ! तीर्थकृत्–तीर्थंकर ! ये–यादृशाः । ते

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

तव । वैभवान् ऐश्वर्य्याणि, प्रभावानिति यावत् । प्रवीक्ष्य समवलोक्य, मोमुदति–पुनः पुनरतिशयेन वा मोदन्ते इति मुद् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य गुणे मोमुद् इत्यवस्थायां वर्तमानायामन्ति प्रत्यये न लुकि मोमुदति जरिहृषति, तेभ्य इति शेषः । सः–तादृशः । नतामरविभुः–नता अमर–विभवो देवेन्द्रा यत्र स तथा । श्रीकुन्थुविभुः श्रीकुन्थुनामा जिनेश्वरः । सौवाः–स्वीयाः । श्रियः–मोक्षलक्षणा लक्ष्म्यः । मामातु–पुनः पुनरति–शयेन वा मयतामिति मे धातोः "आत् सन्ध्यक्षरस्य–" ४।२।९।। इत्यात्वे यंङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य ह्रस्वत्वे आत्वे च मामा इत्यवस्थायां वर्तमानायां तुवि ईदागमविकल्पपक्षे मामातु–प्रणिददातु ।।१७।।

त्वद्ध्यानासिलतायुधैः शमशितैर्योऽजंघनीद् विद्विषो,
निष्पापं मुनिमार्गकं त्वमिव वा योऽजंघनीत्सद्यमैः ।
द्वेधाऽरातिगणोऽपि येन भवता नानाथ्यते लक्षधा,
नन्द्यावर्तसुलाञ्छनोऽक्षरधनो नानातु नोऽरो जिनः ।।१८।।

अन्वयः – यः, शमशितैः, त्वद्ध्यानासिलतायुधैः, विद्विषः, अजङ्–घनीत्, वा, यः त्वमिव, सद्यमैः, निष्पापम्, मुनिमार्गकम्, अजङ्घनीत्, येन, भवता, द्वेधा, अरातिगणः, अपि, लक्षधा, नानाथ्यते, नन्द्यावर्त–सुलाञ्छनः, अक्षरधनः, जिनः, नः, नानातु ।।१८।।

वृत्तिः – यः–यादृशो जनः । शमशितैः–शमेन विषयेहादिनिवृत्ति–लक्षणेन शितानि शाणितानि तीक्ष्णीकृतानीति यावत् शमशितानि तैस्तथा–शमपूर्वकैरिति भावः । त्वद्ध्यानासिलतायुधैः–तव भवतो जिनेश्वरस्य ध्यानं चिन्तनमेव असिलता करवालः, तदेवायुधमस्त्रं तानि त्वद्ध्याना-सिलतायुधानि तैस्तथा, । विद्विषः–कामक्रोधादिलक्षणानरीन् । अजङ्घनी-त्–पुनः पुनरतिशयेन वा अहन् इति हन् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य जत्वे 'अङे हि हनो' ४।१।३४।। इति घत्वे मतान्तरे घ्नादेशाभावे पूर्वस्य मान्तत्वे 'अदो मुमी' इति स्वानुनासिके जङ्घन् इत्यवस्थायां ह्यस्तन्यां तिवि ईदा–गमे अजङ्घनीत् अजेहिंसीत् । वा–अथवा । यः–यादृशो जनः । त्वमिव भवानिव । सद्यमैः सन्नियमव्रतादिभिः । निष्पापम् निष्कल्मषम् । मुनिमार्गकम्–मुनीनामनगाराणां यतीनामिति यावत् मार्गः

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

ग्रन्था मुनिमार्गस्तन्तथा । मुमुक्षुपद्धतिमिति भावः । अजङ्घनीत्–पुनः पुनरतिशयेन वा अहन् अगच्छदिति अजङ्घनीत्–अजङ्गमीत् । प्रक्रिया पूर्ववदेव । तस्येति शेषः । येन–यत्प्रकारेण । भवता–त्वया । द्वेधा द्वि–प्रकार आभ्यन्तरो बाह्यश्च । अरातिगणः कामादि–शत्रुकदम्बकम् । लक्षधा लक्षप्रकारैः । नानाथ्यते–पुनः पुनरतिशयेन वा नाथ्यते इति नाथ् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य ह्रस्वत्वे आत्वे च नानाथ् इत्यवस्थायां कर्मणि वर्तमानायां ते प्रत्यये क्ये नानाथ्यते उपतातप्यते । स इति यच्छब्दबलादाक्षिप्यते । नन्द्यावर्तसुलाञ्छनः–नन्द्यावर्तः सुलाञ्छनं यस्य स तथा, नन्द्यावर्ताङ्कः । अक्षरधनः–अक्षरो मोक्ष एव धनं सम्पत्तिर्यस्य स तथा, ब्रह्मविभव इत्यर्थः । अरः–तदाख्यः । जिनः–तीर्थकृत् । नः–अस्मान् नानाथतु–पुनः पुनरतिशयेन वा नाथत्विति 'नाथ' धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य ह्रस्वत्वे आत्वे च नानाथ् इत्यवस्थायां वर्तमानायां तुवि प्रत्यये ईदागमविकल्पपक्षे "अघोषे प्रथमोऽशिटः–" १।३।५०।। इति प्रथमत्वे नानात्तु ऐश्वर्ययतु । रूपकोपमयोस्तिलतण्डुलवत् संसृष्टिः ।।१८।।

येऽतात्रासिषुराशु भाविभविका याज्ञां शिरश्शेखरां,
ते डोढौकतु तान्प्रतीन्द्रनिकरांस्त्वन्मित्रवत् स्वश्रियः ।
श्रीमल्लीजिनपादपद्मयुगली यैरर्च्यते यस्य ते,
स श्रीकुम्भभवो भवोदधिरजोभीभ्योऽपि पापेतु नः ।।

अन्वयः – ये, भाविभविकाः, शिरश्शेखराम्, आज्ञाम्, आशु, अतात्रासिषुः, ते, त्वन्मित्रवत्, तान्, इन्द्रनिकरान्, प्रति, स्वश्रियः, डोढौकतु, श्रीमल्लीजिन ! यस्य, ते, पादपद्मयुगली, अर्च्यते, नः, सः, श्रीकुम्भभवः, भवोदधिरजोभीभ्यः, अपि, पापेतु ।।१९।।

वृत्तिः – ये–यादृशा जनाः । भाविभविकाः–भाविनो भावनावन्तश्च ते भविका भव्या मोक्षगमनयोग्या इति यावत् भाविभविकाः । शिरश्शेखराम्–शिरस उत्तमाङ्गस्य शेखराम्–स्रग्रूपाम् । अत्र यद्यपि शेखर शब्दस्यैव शिरः स्रगित्यर्थस्तथापि विशेषण--समवधाने विशिष्टवाचकपदस्य विशेष्यमात्रपरत्वमिति । आज्ञाम्–निदेशम् । भवत इति शेषः । आशु झटिति । अतात्रासिषुः–पुनः पुनरतिशयेन वा अत्रासत इति त्रैधातोरात्वे

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

यङि लुपि द्वित्वे अनादिलोपे पूर्वस्य ह्रस्वत्वे आत्वे च तात्रा इत्यवस्था–मद्यतन्यामवि मध्ये सिजि "सिज्विदोऽभुवः–" इति पुंसि "यमिरमि" ४।४।८७।। इतीटि सोऽन्तत्वे च "नाभ्यन्तस्था" २।३।१५।। इति षत्वे सकारस्य रुत्वविसर्गयोः– अतात्रासिषुः अदादासिषुः । ते तादृशाः । त्वन्मित्रवत्–भवन्मित्रमिव । तान्–प्रसिद्धान् । इन्द्रनिकरान्–इन्द्रसमूहान् । प्रति प्रतिगताः । स्वःश्रियः–स्वर्गलक्ष्मीः इन्द्रलक्ष्मीरित्यर्थः । डोढौकतु–पुनः पुनरतिशयेन वा ढौकन्तामिति ढौक् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य ह्रस्वत्वे तृतीयत्वे च गुणे डोढौक् इत्यवस्थायां विधावन्तु प्रत्यये न लुकि डोढौकतु–तोत्रौकतु । श्रीमल्लीजिन ! श्रीमल्लिनाथ जिननायक ! यस्य–यादृशस्य ते–भवतः । पादपद्मयुगली पादपद्मानां चरणकमलानां युगली द्वयी पादपद्मयुगली, चरणकमलद्वयमित्यर्थः । अर्च्यते–पूज्यते । तानित्या–क्षिप्यते । नः अस्मान् । अस्मदादीनित्यर्थः । सः–तादृशो भवान् । श्रीकुम्भभवः–श्रीकुम्भजन्मा । भवोदधिरजोभीभ्योऽपि भवः संसार उदधिः सागर इवेति भवोदधिस्तस्मात् या रजः, रजःपरिमाणा स्वल्पतरा या भियो भीतयस्ताभ्योऽपि, अत्यल्पभयेभ्योऽपीत्यर्थः । पापेतु–पुनः पुनरतिशयेन वा पात्विति पाधातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य ह्रस्वत्वे आत्वे च पापा इत्यवस्थायां प्रार्थनायां तुवि ईदागमे गुणे च पापेतु रारक्षीतु ।।१९।।

कर्मैधांसि निदन्दहीति जिन ! ते जापाग्निना दाववत्,
सेन्द्रादीनपि जाजहीसि विभवैर्वर्धिष्णुभी रामवत् ।
यस्याङ्घ्रि द्वितयी मुदं सुमनसां लालेति सीतेन्द्रवत्,
स श्रीमान् मुनिसुव्रतो जनिततेर्नो जोगुपीत्वार्तितः ।।

अन्वयः – जिन ! ते, दाववत्, जापाग्निना, कर्मैधांसि, निदन्दहीति, सः, वर्धिष्णुभिः, रामवत् विभवैः इन्द्रादीन्, अपि, जाजहीसि, यस्य, अङ्घ्रिद्वितयी, सीतेन्द्रवत्, सुमनसाम्, मुदम्, लालेति, सः, श्रीमान् मुनिसुव्रतः नः, जनिततेः, आर्तितः, जोगुपीतु ।।

वृत्तिः – जिन ! भगवन्नर्हन् ! ते तव । नाम्नः, यः, इति शेषः । दाववत् दावाग्नितुल्येन । जापाग्निना जापो जपनमेव अग्निर्वह्निर्जापाग्निस्तेन तथा । कर्मैधांसि–कर्माण्येव अदृष्टान्येव एधांसि दारूणि काष्ठा-

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

नीति यावत्, तानि तथा । निदन्दहीति--पुनः पुनरतिशयेन वा दहते इति निपूर्वाद् दह धातोर्यङ्‌ि लुपि द्वित्वे "जपजभ" इति पूर्वस्य मान्तत्वे मकारस्य नकारे निदन्दह इत्यवस्थायां वर्तमानायां तिबि ईदागमे निदन्दहीति भस्मीचरिकरीति । सः–तादृशो जनः । वर्धिष्णुभिः--वर्धमानैः । रामवत् रामतुल्यैः । विभवैः–सम्पद्भिः । इन्द्रादीनपि शक्रप्रभृतीन् खलु । अन्येषां का कथेति भावः । जाहसीति–पुनः पुनरतिशयेन वा हसतीति हस् धातोर्यङ्‌ि लुपि द्वित्वे पूर्वहकारस्य जकारादेशे आत्वे च जाहस् इत्यवस्थायां वर्तमानायां तिबि ईदागमे जाहसीति तिरश्चरीकरीति, इन्द्रादप्यधिकलक्ष्मीको भवतीत्यर्थः । तथा, यस्य यादृशस्य जिनेश्वरस्य । अङ्घ्रिद्वितयी अङ्घ्र्योश्चरणयोर्द्वितयी द्वयी अङ्घ्रिद्वयी–पादद्वयमित्यर्थः । सीतेन्द्रवत्–सीतेन्द्र इव । सुमनसाम्–देवानाम् । मुदम्–हर्षम् । लालेति--पुनः पुनरतिशयेन लातीति लाधातोर्यङ्‌ि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य ह्रस्वत्वे आत्वे च लाला इत्यवस्थायां वर्तमानायां तिबि ईदागमे एदादेशे लालेति स्वीचरीकर्ति । यत्पादद्वयमवलोक्य सर्वे देवा मोदन्ते इत्यर्थः । सः-तादृशः श्रीमान्–श्रीसम्पन्नः । मुनिसुव्रतः–मुनिसुव्रतनामा जिनेश्वरः । नः--अस्माकम् । जनिततेः--जन्मपरम्परायाः । आर्तितः पीडातः । जोगुपीतु-पुनः पुनरतिशयेन वा गोपायतु--इति गुप् धातोर्यङ्‌ि लुपि द्वित्वे पूर्वगकारस्य जकारे गुणे च जोगुप् इत्यवस्थायामनुबन्धनिर्देशादायप्रत्ययाभावे ईदागमे "द्वयुक्तोपान्त्यस्य–" ४।३।१४।। इति गुणाभावे जोगुपीतु । उपमालङ्कारः "साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमाद्वयोः" इति साहित्यदर्पणे विश्वनाथेन तल्लक्षणमभाणि ।।२०।।

ये शाशङ्कति धर्मतत्त्वकृतये शंवर्द्धये ते विभोः,
प्रालोलोकति तेऽङ्गिनो हि नरकान् सप्तापि चार्वाकवत् ।
ये शाशंसति यं नमिं नवनवैः स्तोत्रैः सुरेन्द्रादिवत्,
ते शाशंसतु किं नु नो अतिशयाः सर्वेऽपि तेषां रिपून् ।।

अन्वयः – विभो !, ये, ते, धर्मतत्त्वकृतये, शंवर्द्धये शाशङ्कति, ते, हि, अङ्गिनः, चार्वाकवत्, सप्तापि नरकान्, प्रालोलोकति, ये, यम्, नमिम्, सुरेन्द्रादिवत्, नवनवैः, स्तोत्रैः, शाशंसति, तेषाम्, रिपून्, ते, सर्वेऽपि, अतिशयाः, किन्नु, नो, शाशंसतु ।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

वृत्तिः – विभो !–सर्वलोकव्यापक जिनेश्वरप्रभो ! ये यादृशाः जनाः । ते–तव । धर्मतत्त्वकृतये धर्मस्य सुकृतस्य, तत्त्वं याथार्थ्यं धर्मतत्त्वम् तस्य या कृतिः अहिंसादि–पञ्चमहाव्रतपालनक्रिया सा धर्मतत्त्वकृतिस्तस्यै तथा, तामुद्दिश्य, शैवर्द्धये शैव्यः मोक्षलक्षणा मोक्षसम्बन्धिन्यो वा या ऋद्धयः सम्पदस्ता उद्दिश्य च, शाशङ्कति–पुनः पुनरतिशयेन वा शङ्कते इत्युदित्वात्सनन्ताच्छङ्क धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्याऽऽत्वे शाशङ्क इत्यवस्थायां वर्तमानायामन्ति प्रत्यये न लुकि शाशङ्कति–सन्देदिहति । ते–तादृशाः । हिः पादपूरणे । अङ्गिनः प्राणिनः । चार्वाकवत्–चार्वाक इव । तस्य नास्तिकत्वादिति भावः । त्वद्विभवाशङ्किनोऽपि नास्तिका एवेत्यतः–सप्त–सप्त सङ्ख्याकानपि तपनादिलक्षणान् । नरकान्–निरयान् प्रालोलोकति–पुनः पुनरतिशयेन वा प्रालोकन्ते इति प्र आङ्पूर्वकाल्लोक् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य ह्रस्वत्वे गुणे च प्रालोलोक् इत्यवस्थायां वर्तमानायामन्ति प्रत्यये न लुकि प्रालोलोकति–प्रदरीदर्शति । नारकीय–दुःखानि बोभुञ्जतीत्यर्थः । तथा, ये यादृशा जनाः । यम्–यादृशम् । नमिम् तदाख्यतीर्थङ्करम् । सुरेन्द्रादिवत्–सुरेन्द्रादय इव । नवनवैः–नवप्रकारैः । स्तोत्रैः स्तवैः । शाशंसति–पुनः पुनरतिशयेन वा शंसन्तीति शंस् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य आत्वे शाशंस् इत्यवस्थाया वर्तमानायामन्ति प्रत्यये न लुकि शाशंसति तोष्टुवति । तेषाम्–तादृशानां–स्तोतृणाम् । रिपून्–कामादिद्विषः । ते–तव । सर्वे–समेऽपि । अतिशयाः अलौकिक-विशेषभावाः । किन्नु–कथम् । नो–न । शाशंसतु–जङ्घ्नन्तु । अपि तु जेहिंसत्वेव । त्वत्स्तोतृणां समे द्विषो विनश्यन्तीत्यर्थः ॥२१॥

द्वयक्षेषु प्रभुता शिरोवहनता मेऽबोभवीद् दक्षिणा–,
वर्ताख्यापि वरीवरीति विभवाच्छङ्खोऽपि बाभक्ति ताम् ।
यस्यां किं किल याचितुं तव पुरः शङ्खश्रियः शाश्वतीः,
स श्रीनेमिजिनः प्रणम्रभुवनस्तात्रेतु तात्रेतु नः ॥२२॥

अन्वयः – द्वयक्षेषु, शिरोवहनता, मे, अबोभवीत्, विभवात्, दक्षिणावर्ताऽऽख्याऽपि, वरीवृतीति, तव, पुरः, शाश्वतीः, शङ्खश्रियः, याचितुम्, यस्याम्, किल ताम्, शङ्खोऽपि, बाभक्ति, सः, प्रणम्रभुवनः, श्रीनेमिजिनः, नः, तात्रेतु, तात्रेतु ॥२२॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

वृत्तिः – द्व्यक्षेषु–द्वे अक्षे इन्द्रिये येषां ते द्व्यक्षास्तेषु । प्रभुता–स्वामित्वम् । शिरोवहनता–शिरोधार्य्यत्वञ्च । मे–मम । अवोभवीत्–पुनः पुनरतिशयेन वाऽभवदिति भूधातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य तृतीयत्वे ह्रस्वत्वे गुणे च वोभू इत्यवस्थायां ह्यस्तन्यां दिवि ईदागमे गुणे अवादेशे अटि अवोभवीत्–अवोभूत् । विभवात्–त्वत्प्रभावात् । दक्षिणावर्त्ताऽऽख्या दक्षिणावर्त इति नामापि । वरीवृतीति–पुनः पुनरतिशयेन वा वर्तते इति वृत् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य अत्वे री इत्यागमे च वरीवृत् इत्यवस्थायां वर्तमानायां तिवि ईदागमे गुणनिषेधे च वरीवृतीति–वेविदीति । अनन्तरम् ते तव । पुरः अग्रे । शाश्वतीः–नित्याः । शङ्खश्रियः–सुखविज्ञानानन्तलक्षणाः सम्पदः । याचितुम्–प्रार्थितुम् । यस्याम्–दक्षिणावर्ताऽऽख्यायाम् । किं किल–निश्चयेन । गतायां–सत्यामिति शेषः । शङ्खस्तव चिह्नभूतः कम्बुः । ताम्–प्रसिद्धाम्, दक्षिणावर्ताख्याम् । वाभक्ति–पुनः पुनरतिशयेन वा भजते इति भज् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य तृतीयत्वे आत्वे च वाभज् इत्यवस्थायां वर्तमानायां तिवि ईदागम–विकल्पपक्षे 'अघोषे प्रथमः' १।३।५०।। इति प्रथमत्वे वाभक्ति–सेसेवीत् । सः-तादृशः । श्रीनेमिजिनः–श्रीनेमिनामा तीर्थकृत् । नः अस्मान् । तात्रेतु तात्रेतु–पुनः पुनरतिशयेन वा त्रायतामिति, यङ लुबन्तत्वादेवाऽऽभीक्ष्ण्यावगमे द्विरुक्तिर्भक्त्यादृतिजनितेति न दोषः । कृतात्वात् त्राधातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्यानादिलोपे ह्रस्वत्वे आत्वे च तात्रा इत्यवस्थायां प्रार्थनायां तुवि ईदागमे गुणे च तात्रेतु–ररक्षीतु । अत्राचेतने याचनादिरूप–चेतनधर्म–समारोपादतिशयोक्तिः ।।२२।।

मूर्ति यायजतीश ! ते सुमनसां भङ्ग्येव ये सच्छ्रिये,
नूनं यायजतीह राज्यविभवैर्देपालवत्तेऽङ्गिनः ।
ये वा जाजपतीद्धमन्त्रमणिवत्ते यस्य नामान्यहो,
पापूर्य्याच्छिविनो गुणांश्च सकलान् श्रीपार्श्वनाथः स नः ।।

अन्वयः – ईश ! , ये, सच्छ्रिये, सुमनसाम्, भङ्ग्येव, ते, मूर्तिम्, यायजति, ते, अङ्गिनः, देपालवत्, इह, राज्यविभवैः, नूनम्, यायजति, ये, वा, इद्धमन्त्रमणिवत् यस्य, ते, शिविनः, नामानि, जाजपति, अहो, सः, श्रीपार्श्वनाथः, सकलान्, गुणांश्च, नः, पापूर्यात् ।।२३।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

वृत्तिः – ईश !–प्रभो ! । ये–यादृशा जनाः । सच्छ्रिये–उत्तम लक्ष्म्यै । सुमनसाम्–पुष्पाणाम् । भङ्ग्या--रचनयैव, ते--तव । मूर्तिम्-बिम्बम् यायजति–पुनः पुनरतिशयेन वा यजन्तीति यज् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य आत्वे यायज् इत्यवस्थायां वर्तमानायामन्तिप्रत्यये न लुकि यायजति पोपूजयन्ति । ते–तादृशा अङ्गिनः–प्राणिनः । देपालवत्--देपाल इव । राज्यविभवैः राज्यसम्पद्भिः । सहेति शेषः । नूनम्–निश्चितम् । यायजति–सङ्गतिं चरीकर्ति । राज्यविभवं प्राप्नोतीत्यर्थः । वा–समुच्चये । ये–यादृशाः । यस्य–यादृशस्य । ते–तव । शिविनः–सिद्धिरतः । इद्धमन्त्रमणिवत्--दीप्तमन्त्रमणितुल्यानि । नामानि–अभिधेयानि । जाजपति–भृशं--जपन्ति । अत्र जप् धातोर्गर्हायामेव "गृलृप्" ३।४।१२।। इत्यादिना यङ्विधानाज्जाजपतीति प्रयोगश्चिन्त्य एव । यङोऽभावे यङलुपो गगनकुसुमायमानत्वात्, अतः प्रक्रिया न दर्शिता । किञ्च यद्यपि मान्तत्वे जाजपतीति सर्वथा दुर्लभमेवेति । अहो इति कोमलामन्त्रणे । सः–तादृशः । श्रीपार्श्वनाथः–तदाख्यस्त्रयोविंशस्तीर्थकृत् । नः–अस्माकम् । सकलान्–सर्वान् । गुणान्–धर्मान् । पापूर्यात्–पुनः पुनरतिशयेन वा पूर्य्यादिति पृ धातोर्यङ् लुपि द्वित्वे पूर्वस्य अत्वे आत्वे च पाप इत्यवस्थायां प्रार्थनायां यात् प्रत्यये "ओष्ठ्यादुर" ४।४।११८।। इत्युरादेशे "भ्वादेर्नामिनः" २।१।६३।। इति दीर्घे पापूर्यात् परिप्रियात् ।।२३।।

मूर्तिं मामदति स्म वीक्ष्य जिन ते देवाधिदेव प्रभा–
वत्याद्या इव ये परिप्रति हितान् देवर्द्धयः सिद्धयः ।
येनाजायि हरिर्बलादिह महावीरो वरीवर्त्यसौ,
यं सिंहोऽङ्कमिषान्नृसिंहमभजच्छ्रीवर्धमानः श्रिये ।।२४।।

अन्वयः – जिन ! देवाधिदेव ! ते, मूर्तिम्, वीक्ष्य, प्रभावत्याद्या, इव ये, मामदति स्म, तान्, हि, देवर्द्धयः, सिद्धयः, परिप्रति, येन, बलात्, हरिः, अजायि, असौ, महावीरः, इह, वरीवर्ति, सिंहः, अङ्कमिषात्, यम्, नृसिंहम्, अभजत्, श्रीवर्धमानः, श्रिये ।।२४।।

वृत्तिः – जिन ! सर्वज्ञ ! देवाधिदेव ! सुराधिनाथ ! ते–तव ।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

मूर्तिम्–विम्वम् । वीक्ष्य–अवलोक्य । प्रभावत्याद्या इव--प्रभावतीनाम--राज्ञ्या तुल्याः । ये–यादृशा जनाः । मामदति स्म--पुनः पुनरतिशयेन वा माद्यति स्मेति मद्धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य आत्वे मामद् इत्यवस्थायां वर्तमानायामन्ति प्रत्यये नलुकि मामदति स्म–जाहृषति स्म । हि पादपूरणे तान्–तादृशान् । देवर्द्धयः--देवसम्पदः सिद्धयः--मोक्षादिलक्षणाश्च । परीप्रति--पुनः पुनरतिशयेन वा पिप्रतीति पृ धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य अत्वे रि इत्यागमे च परि पृ इत्यवस्थायां वर्तमानायामन्ति प्रत्यये नलुपि रेफादेशे परिप्रति--रारक्षति, ते दवर्द्धिसिद्धयादीन् लभन्ते इत्यर्थः । तथा, येन--भवता । वलात्–प्रसह्य । हरिः–सिंहः । अजायि--जीयते स्म । जि--धातोः कर्मण्यद्यतन्यां ते "भावकर्मणोः ३।४।६८।। इति णिचि न लुकि च वृद्धाचादेशे अजायि--पराभावि । अस्यै सिंहजेता । इह--अत्र । महावीरः--महांश्चासौ वीर इत्यन्वर्थः श्रेष्ठवीरः । वरीवर्ति--पुनः पुनरतिशयेन वा वर्तते इति वृत् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य अत्वे री इत्यागमे च वरी-वृत् इत्यवस्थायां वर्तमानायां तिवि ईदागमविकल्पपक्षे गुणे वरीवर्ति--वेविदीति । सिंहाभिभवात् महावीर इति नामाख्यात इत्यर्थः । तथा, सिंहः मृगपतिः–अङ्कमिषात् चिह्नव्याजात् । यम्--यादृशम् । नृसिंहम्--पुरुष–श्रेष्ठम् । अभजत् आश्रयत् । पराजितो हि सेवको भवतीति भावः । सः इति लभ्यते । श्रीवर्धमानः--तन्नामा तीर्थंकृत् लिपे--मुक्तिलक्ष्म्यै भव–त्विति शेषः । अत्र अङ्कमिवाक् भजने 'अजायि' इत्यस्य हेतुत्वेनानुसन्धा-नात्काव्यलिङ्गम् तच्चाङ्कमिषादित्यपह्नुतिसङ्कीर्णम् ।।२४।।

एवं ये वृषभादयो जिन चतुर्विंशाः प्रवावन्दिता,
लक्ष्मीसागरसूरिराजपनिता रत्नत्रयीनन्दिताः ।
ते देदीपतु सार्वनिर्वृतिसुखैः सर्वाय संविच्छ्रियः,
श्रीमन्तो जिनमण्डनाः शिवपुरः पोपूरतूच्चैः श्रियः ।।२५।।

अन्वयः – एवम्, ये, वृषभादयः, जिनचतुर्विंशाः, रत्नत्रयीनन्दिताः, लक्ष्मीसागरसूरिराजपनिताः, प्रवावन्दिताः, ते, श्रीमन्तः, जिनमण्डनाः, सार्वनिर्वृतिसुखैः, सर्वाय संविच्छ्रियः, देदीपतु, उच्चैः श्रियः, शिवपुरः पोपूरतु ।।२५।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

वृत्तिः – एवम् पूर्वोक्तप्रकारेण । रत्नत्रयीनन्दिताः ज्ञानादित्रयी–नन्दिताः भुवनत्रयीविख्याता वा । वृषभादयः आदिनाथादयः । जिनचतु–र्विंशाः–जिनाः–सर्वज्ञाश्च ते चतुर्विंशास्ते तथा, चतुर्विंशतिजिनेश्वराः । लक्ष्मीसागरसूरिराजपनिताः–लक्ष्मीसागराः श्रीसमुदाये सूरयः आचार्या राजानश्चन्द्रास्तैः, लक्ष्मीसागरनामसूरिश्रेष्ठैश्च पनिताः स्तुताः । प्रवा–वन्दिताः–पुनः पुनरतिशयेन वा प्रवन्दिताः इति प्रपूर्वाद् वन्द्धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य आत्वे प्रवावन्द् इत्यवस्थायां कर्मणि भूते क्त प्रत्यये इटि प्रवावन्दिताः प्रणंनमिताश्च । ते–तादृशा जिनाः । जिनमण्डनाः सर्वज्ञ-श्रेष्ठाः, तदाख्या गुरवश्च । सर्वनिर्वृतिसुखैः–सकलमोक्षसुखैः सर्वाय–संविच्छ्रियः–सर्वाः–आयो यशः संविद् ज्ञानं श्रियः सम्पदः येषान्ते । यद्वा मम यशोज्ञानसम्पदः । देदीपतु-पुनः पुनरतिशयेन वा दीप्यन्तामिति दीप् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य गुणे देदीप् इत्यवस्थायां प्रार्थनायामन्तु प्रत्यये नलुकि देदीपतु दोद्योततु । उच्चैः श्रियः उच्चैः श्रीर्यासु तास्तथा । ममोच्चैरुत्तमा लक्ष्मीर्वा । शिवपुरः कल्याणग्रामाः । मोक्षस्थानञ्च । पोपू-रतु–पुनः पुनरतिशयेन वा पूर्यन्तामिति पूर धातोर्यङ् लुपि द्वित्वे पूर्वस्य ह्रस्वत्वे गुणे च पोपूर इत्यवस्थायां प्रार्थनायामन्तु प्रत्यये न लुकि पोपूरतु वरीवृधतु ।।२५।। इति पृथक् चतुर्विंशतिजिनस्तवनं नमस्काराश्च ।।२५।।

प्रागैरावतभारतैकजनुषोऽसास्नापिषुर्वासवैः,
स्वर्णाद्रौ त्वपरीपरुस्त्रिजगतीर्दानैः स्वसांवत्सरैः ।
लब्ध्वा ज्ञानमजङ्गमुः शिवपुरीं येऽनन्तसौख्यां मुनीन्,
श्रीसङ्घानभिपप्रतुस्वविभवैः पुण्योद्भवैस्ते जिनाः ।।२६।।

अन्वयः – ये, प्रागैरावतभारतैकजनुषः, वासवैः, अस्नापिषुः, तु, स्वर्णाद्रौ, स्वसांव्वत्सरैः, दानैः, त्रिजगतीः, अपरीपरुः, ज्ञानम्, लब्ध्वा, अनन्तसौख्याम्, शिवपुरीम्, अजङ्गमुः, ते, जिनाः, मुनीन्, श्रीसङ्घान्, पुण्योद्भवैः, स्वविभवैः, अभिपप्रतु ।।२६।।

वृत्तिः – ये–यादृशा यावन्तो वा । प्रागैरावतभारतैकजनुषः–प्रागै–वताख्यं यद्भारतखण्डम्, तत्रैकमद्वितीयं जनुर्जन्म येषान्ते तथा ।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

असकृज्जन्मान इत्यर्थ: । वासवै: इन्द्रै: । असास्नासिषु: पुन: पुनरतिशयेन वा असिस्नपन्निति स्नाधातोर्यङ्‌ लुपि द्वित्वे पूर्वस्यानादिलोपे ह्रस्वत्वे आत्वे च सास्ना इत्यवस्थायां णिचि "अर्ति री" ४।२।२१।। इत्यादिना प्वन्तत्वे "ज्वल ह्वल्–" ४।२।३२।। इत्यादिना ह्रस्वत्वविकल्पे अद्यतन्यामनि तस्य "णिश्रि–" ३।४।५७।। इति ङे णिलोपे असास्नापन् इत्येव साधु: ण्यन्तात् सिजअभावादिति असास्नापिषुरिति प्रयोगश्चिन्त्य एव, स्नपिता अभूवन्नित्यर्थ: । यद्वा–असास्नासिषुरिति पाठ:, अत्र च असास्ना अनित्यवस्थायां सिचि, अन: पुसि "यमिरभि" ४।४।८७।। इति इटि सत्वे च षत्वे च असास्नासिषु:, सकारस्य रुत्वविसर्गौ ।। तु–पुन: । स्वर्णाद्रौ–मेरौ । मेरौ स्नपिता इत्यन्वयो वा बोध्य: । स्वसांवत्सरै:–निजसंवत्सरभवै: । दानै:–वितरणै: । त्रिजगती:–त्रिभुवनानि । अपरीपरु:–पुन: पुनरतिशयेन वा अपिपरुरिति पृ धातोर्यङि. लुपि द्वित्वे पूर्वस्य अत्वे री इत्यन्तागमे च परी पृ इत्यवस्थायां ह्यस्तन्यामन्ति अडागमे अपरी पृ अनित्यवस्थायां "द्व्युक्त जक्षपञ्चत:–" ४।२।९३।। इति पुसि "पुस्यौ" ४।३।७८।। इति गुणे अपरीपरु: अवरीभरु: । तथा, ज्ञानम्–केवललक्षणम् । लब्ध्वा सम्प्राप्य अनन्तसौख्याम्–अनन्तमपरिमितं सौख्यं यत्र तान्तथा सकलसुखपूर्णाम् । शिवपुरीम् मोक्षनगरीम् । अजङ्गमु:–पुन: पुनरगच्छन्निति गम् धातोर्यङ् लुपि द्वित्वे पूर्वस्यमान्तत्वे मकारस्य ङकारे जङ्गम् इत्यवस्थायां ह्यस्तन्यामनि पुसि अडागमे सकारस्य रुत्वविसर्गयोरजङ्गमु: अयायु: ते–तादृशा: जिना: सर्वज्ञा: । पुण्योद्भवै: सुकृतप्रभवै: । स्वविभवै: निजप्रभावै: । मुनीन् यतीन् । श्रीसङ्घान्–श्रीसमितीश्च । अभिपर्प्रतु:–पुन: पुनरतिशयेन वा अभिपिप्रतु इति, पृ धातोरभिपूर्वाद् यङ् लुपि द्वित्वे पूर्वस्य अत्वे रन्तत्वे अभिपर्पृ इत्यवस्थायामन्तु प्रत्यये न लुकि रेफादेशे अभिपर्प्रतु वर्भ्रतु ।।२६।।

या मध्ये सदसं जिनैस्त्रिपदिकादीपी स्म राराज्यते,
भास्यन्ते स्म ततोऽपि पूर्वसमयोद्दीपा गणीन्द्रै: परै: ।
देदीपीति ततोऽपि भासितजगत्सिद्धान्तदीपोऽर्कवत्,
विश्वान्धंकरणं तमोऽप्यपहरन् भूयात् स सङ्घ: श्रिये ।।

अन्वय: – मध्येसदसम्, या, त्रिपदिकादीपी, जिनै:, राराज्यते स्म,

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

ततोऽपि, पूर्वसमयोद्दीपाः, परैः, गणीन्द्रैः, भास्यन्ते स्म, ततोऽपि भासित–जगत्सिद्धान्तदीपः, अर्कवत्, विश्वान्धंकरणम्, तमः, अपि, अपहरन्, देदीपीति, सः, संघः, श्रिये, भूयात् ।।२६।।

वृत्तिः – मध्ये सदसम्-सदसो मध्ये इति मध्ये सदसम्, समवसरण-मध्ये इत्यर्थः । या–यत्प्रकारा । त्रिपदिकादीपी--त्रिपदिकादीपिका । जिनैः सर्वज्ञैः । राराज्यते स्म-पुनः पुनरतिशयेन वा राज्यते स्मेति राजृ धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य ह्रस्वत्वे आत्वे च राराज् इत्यवस्थायां कर्मणि वर्तमा--नायां ते प्रत्यये मध्ये क्ये, राराज्यते स्म शोशुभ्यते स्म । ततोऽपि तदनन्तरञ्च पूर्वसमयोद्दीपैः–चतुर्दशपूर्वादि--समयोद्दीपैः । परैः–प्रकृष्टैः । गणीन्द्रैः-गणधरैः । भास्यन्ते स्म--दीप्यन्ते स्म । ततोऽपि--तदनन्तरञ्च । भासित–जगत्सिद्धान्तदीपः–भासितः प्रख्यापितो जगति लोके सिद्धान्त एव दीपो येन सः, अर्कवत्–सूर्य्यवत् । विश्वान्धङ्करणम्–विश्वस्य लोकस्य अन्धङ्करणं दृष्ट्युपघातकम् । तमः अज्ञानम् ध्वान्तञ्च । अपहरन्–विनाशयन् । देदीपीति–पुनः पुनरतिशयेन वा दीप्यते इति दीप् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य ह्रस्वत्वे गुणे च देदीप् इत्यवस्थायां वर्तमानायां तिवि ईदागमे देदीपीति, यमित्यनुषज्यते । सः-तादृशः । सङ्घः–श्रीसङ्घः । श्रिये-कल्याणाय भूयात् स्तात् ।।२७।।

सङ्घो यः परिपर्ति यां प्रमहितुं सम्यक्त्ववैशारदां,
ध्यातुं वा दरिदर्ष्टि हृत्सरसिजे श्रीतीर्थकृच्छारदाम् ।
रक्षायै परिपर्त्वसौ जिनमतं तं क्षीणकष्टारकं,
विश्वेष्टैः परिपर्तु सा भगवती श्रीसङ्घभट्टारकम् ।।२८।।

अन्वयः – यः, सङ्घः, याम्, सम्यक्त्ववैशारदाम्, श्रीतीर्थकृच्छार-दाम्, प्रमहितुम्, परिपर्ति, ध्यातुम्, वा, हृत्सरसिजे, दरिदर्ष्टि, रक्षायै, असौ, तम्, जिनमतम्, परिपर्तु, क्षीणकष्टाख्यम्, श्रीसङ्घभट्टारकम् सा, भगवती, विश्वेष्टैः, परिपर्तु ।।२८।।

वृत्तिः – यः–यत्प्रकारः । सङ्घः–चतुर्विधसङ्घः । याम्-यत्प्रकाराम्

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

सम्यक्त्व–वैशारदाम्–सम्यक्त्वे वैशारदा निपुणा, सम्यक्त्व–प्रतिपादयित्री तान्तथा। अत्र वैशारदामिति युक्तम् स्वार्थाद्यणन्तत्वे ङीप्रसङ्गात्। श्रीतीर्थकृच्छारदाम्–श्रीतीर्थकृतो जिनेश्वरस्य शारदा सरस्वती, ताम्, वाणीमित्यर्थः। प्रमहितुम्–पूजयितुम्। परिपर्ति–पुनः पुनरतिशयेन वा पिपर्तीति पृ धातोर्यङ् लुपि द्वित्वे पूर्वस्य अत्वे रि इत्यागमे च परि पृ इत्यवस्थायां वर्तमानायां तिवि ईदागमाभावपक्षे गुणे परिपर्ति–रारक्षीति ध्यातुम्–चिन्तितुम्। वा। हृत्सरसिजे–मनःपद्मे। दरिदर्ष्टि–पुनः पुनरतिशयेन वा पश्यतीति दृश् धातोर्यङि लुपि द्वित्वे पूर्वस्य अत्वे रि इत्यागमे दरिदृश् इत्यवस्थायां वर्तमानायां तिवि ईदागमाभावपक्षे गुणे "यज् सृज्–" २।१।७७।। इति षत्वे "तवर्गस्य–" १।३।६०।। इति टत्वे च दरिदर्ष्टि अवलोलोकीति। असौ-एषा शारदा। तम्–तादृशम्। जिनमतम् जिनेश्वरप्रियम्। रक्षायै पालनाय। परिपर्तु–वरिभर्तु। यद्वा असौ सङ्घः, तम्, जिनमतम्–जिनेश्वरोक्तमार्गम्। रक्षायै परिपर्त्वित्यर्थः। सा–तादृशी। भगवती ऐश्वर्य्य-शालिनी शारदा। क्षीणकष्टारकम्-क्षीणं नष्टं कष्टस्य आरकं कालविशेषो यस्स तन्तथा। यद्वा क्षीणकष्टारकमित्यस्य जिनमतमित्यत्रान्वयो बोध्यः। श्रीसङ्घभट्टारकम् श्रीसङ्घेश्वरम्। विश्वेष्टैः–सकलाभिलषितैः। परिपर्तु वरिभर्तु। सकलाभिलषितं दत्त्वा रक्षतु पूरयतु वेत्यर्थः ।।२८।।

एभिस्त्रिभिः कल्पैश्चतुर्विंशतिजिनानां स्तुतयो भवन्ति ।।

।। इति चतुर्विंशति–जिनस्तुतिव्याख्या समाप्ता ।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

(३)

वर्णक्रम-सूक्ति-पंचाशिका

समश्लोकी गूर्जरभाषानुवाद—
मण्डिता

❀

अनुवादकः
भानुभाई व्यासः, 'बादरायणः'

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

—श्रीगौतमस्वामिने नमः—

-वर्णक्रम—सूक्ति—पंचाशिका-

अर्हं नमामि सर्वेषां,
मन्त्राणां मन्त्रमुत्तमम् ।
सुवर्णमिव धातूनां,
मेरुमिव महीभृताम् ॥१॥

आलोक एव नन्दन्ति, सज्जना न तु दुर्जनाः ।
अभ्युद्यते सहस्रांशौ, फुल्लन्त्यब्जा न कौशिकाः (१) ॥२॥

इङ्गितेनावगच्छन्ति, भावं प्राज्ञा जडा नहि ।
प्रग्रहचालनादेव, चलन्त्यश्वा न गर्दभाः ॥३॥

ईश्वरपूजको नित्यमैश्वर्यमेति शाश्वतम् ।
दारिद्र्यं किं भजेच्चिन्ता—रत्नाराधनतत्परः ॥४॥

उद्यमी सर्वकार्याणां, केवलोऽपि प्रसाधकः ।
तमो हन्ति नभःपारं, यात्येकोऽपि दिवाकरः ॥५॥

ऊर्ध्वं गच्छन्ति निष्पापा, लघुतां न त्यजन्ति ये ।
पङ्कहीनं यथा तुम्बं, यात्यूर्ध्वं त्वरितं जले ॥६॥

ऋजुरेवार्जवं याति, वक्रो गच्छति वक्रताम् ।
वेत्रयष्टिस्तथा वंश—मूलमत्र निदर्शनम् ॥७॥

ऋकारस्येव दैर्घ्यं ये, न विमुञ्चन्ति सर्वदा ।
पदानां वा सुशब्दानामादौ तिष्ठन्ति ते क्वचित् ॥८॥

१— तामसाः । इति पाठान्तरम्

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

लृकारो लघुताया हि, माहात्म्येन ऋमित्रताम् ।
भेजे भुवि सुहृद्भावं, भजन्ते सरला जनाः ॥९॥

लॄर्यदि दीर्घतां प्राप्तस्तदा नेच्छन्ति केचन ।
सर्वसन्माननेच्छूनां, दीर्घता प्रतिबन्धिका ॥१०॥

एक एव गुणो लोके, महाँश्चेत् प्रथयत्यलम् ।
सद्गन्धस्यैव माहात्म्यात्, कुरङ्गो भुवि विश्रुतः ॥११॥

ऐन्द्रवृन्दनतः स स्यादिन्द्रं ध्यायति यः सदा ।
यादृग्बीजं भवेदुप्तं, तादृगेव फलं भवेत् ॥१२॥

ओषधिः सम्भवेन्मूलमात्रं योजकयोगतः ।
एकात् परं नियुक्ता हि, गणनां यान्ति बिन्दवः ॥१३॥

औन्नत्यं भजते काले, क्षुद्रोऽपि सरसो जनः ।
यौवनसमये प्राप्ते, कामिनीकुचकुम्भवत् ॥१४॥

अंनासिक्यमनुस्वारं, वदन्ति वै विपश्चितः ।
स्वरं येऽनुसृतास्ते तु बिन्दुभावेन संस्थिताः ॥१५॥

अःकण्ठ्योऽपि विसर्गोऽपि, स्वरैः सृष्टोऽपि सस्वरः ।
निष्ठया सोऽनुलग्नस्तं, निष्ठा हि कार्यसाधिका ॥१६॥

कर्मण एव सामर्थ्यमेको दुःख्यपरः सुखी ।
भाग्येनाप भवो भूतिं, विभूतिं श्रीपतिस्तथा ॥१७॥

खलेन सहसौहार्दं, विधेयं नैव धीमता ।
समागते तु मध्याह्ने छायेव नैव दृश्यते ॥१८॥

गर्दभा इव ये मूढा, आग्रहवशवर्तिनः ।
दण्डप्रहारमुग्रं ते, प्राप्नुवन्ति पदे पदे ॥१९॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

घर्षणं सर्वदा तेजो–वर्धकं नातिघर्षणम् ।
श्यामं तेन विना भाण्ड–मतिना तेन भिद्यते ॥२०॥

ङादयः पञ्च नासास्य–स्थानं प्राप्तास्तथाऽपि ते ।
क्वचिदेव हि लक्ष्यन्ते, द्विस्थानामीदृशी स्थितिः ॥२१॥

चक्रेणैकेन सूर्यस्य, रथो याति दिगन्तरम् ।
विशिष्टानां कृते सर्वे, नियमाः सम्भवन्ति वा ॥२२॥

छत्रं तापापहाराय, स्वकरस्थं श्रमाय च ।
भवेन्नैकान्ततः किञ्चिन्निमित्तं सुखदुःखयोः ॥२३॥

जगद्विश्वं विचित्रं चेद्, वस्तु चित्रं न चित्रकृत् ।
शते भवति पञ्चाशत्, ज्ञातं गोपालबालयोः ॥२४॥

झङ्कारं कुरुते पीत्वा, परागं मधुपो भृशम् ।
प्राणिनः प्रायशस्तुच्छाः, स्वार्थे मधुरभाषिणः ॥२५॥

ञस्योच्चारः सदा क्लिष्टः, प्रारम्भे तु विशेषतः ।
अन्ते स्थिता हि वक्राः स्युः, सर्वत्र दृश्यते तथा ॥२६॥

टङ्कारः शङ्कराभिख्यदेवप्रख्यापको यथा ।
तथैवान्येऽपि वर्णाः स्युर्वर्णरूपा हि देवताः ॥२७॥

ठठं प्रकुरुते प्राप्य, घटः सोपानपद्धतिम् ।
रीतिरेषा हि सोपानपंक्तेर्ध्वनिविधायिनी ॥२८॥

डयो यथा द्विपक्षाभ्यामुड्डयते विहायसि ।
ज्ञानक्रियात्मपक्षाभ्यां, तथैवात्मा शिवङ्गमः ॥२९॥

ढकारः सर्वदा मूर्खैः, पठ्यते इति विश्रुतः ।
मूर्खत्वसूचको लोके, जडैः किं किं न दूष्यते ॥३०॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

णकारं प्राकृताभाषा, न स्थाने कुरुते भृशम् ।
प्राकृताः प्रायशः स्थान–व्यत्यासकारिणो मताः ॥३१॥

तपसा प्रौढपापानां, नाशो भवति निश्चितम् ।
वज्रस्य किमिहाच्छेद्यमदाह्यमनलस्य किम् ॥३२॥

थुत्कारश्चापथुत्कारः, फुत्कारः क्रियते जनैः ।
एतेषां करणं नो सद्, यतश्चाकरणं वरम् ॥३३ ॥

दानिनः स्वः स्थिताः सर्वे, ग्राहिणो भूस्तलं गताः ।
सन्देहश्चेद्दरीदृश्यौ, सम्यङ्नीरदनीरधी ॥३४॥

धर्मो रक्षति सद्धर्मं, सेवते यो दिवानिशम् ।
रीतिरियं हि सर्वत्र, शिष्टाः सेवकरक्षिणः ॥३५॥

नम्रत्वेन सदा भाव्यं, नम्राश्चिरविलासिनः ।
अनम्रा नाशमायान्ति, तणिशतालवत् सदा ॥३६॥

परमात्मप्रभावेण, परात्मपदतां लभेत् ।
स्पर्शरत्नस्य संसर्गाल्लोहं भवति काञ्चनम् ॥३७॥

फटाच्छटां विषापेतोऽभीक्ष्णं करोति पन्नगः ।
प्रायेण हीनसामर्थ्यो, डम्बरेणैव माद्यति ॥३८॥

ब्रवीमि श्रेयसे श्रेयस्करं तदवधार्यताम् ।
किम्पाकफलवत् त्याज्या, विपाकविरसा रसाः ॥३९॥

भवभीतेन भावात्मा, भावनीयो मुहुर्मुहुः ।
भावात्मभावनादेवाऽभूवन्नभयदा जिनाः ॥४०॥

महामोहमदोन्मत्तः, सदसन्नैव बुध्यति ।
जानाति सदसच्चैवमवगच्छत्यसच्च सत् ॥४१॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

यस्य न दर्शनं सम्यग्, दर्शनं तस्य निष्फलम् ।
नेत्रं नो यस्य तस्याग्रे, यथा रूपनिरूपणम् ॥४२॥

रतिररतिदहेत्तं यो, रतिं नैव विमुञ्चति ।
विरतिं सेवते यस्तं, रतिर्नैव विमुञ्चति ॥४३॥

लक्ष्मीमिच्छन्ति सर्वेऽपि, लक्ष्मीं जानन्ति केचन ।
ज्ञात्वा लक्ष्मीं समीहन्ते लक्ष्मीरतेभ्यः समीहते ॥४४॥

वरं वह्निप्रवेशोऽपि वरं सद्यो विषाशनम् ।
वरं पातो नगोत्तुङ्गाद् वरं नो दुष्टजीवनम् ॥४५॥

शङ्का नैव विधातव्या, कर्तव्ये प्रशमास्पदे ।
शङ्काशिखिशिखादग्धो, नाप्तवान् शिखिनं वणिक् ॥४६॥

षट्सङ्ख्या सर्वदा सेव्या षड्रिपुघ्नी पुरस्कृता ।
देवार्चनं गुरोः सेवाऽधीतिर्दानं तपो व्रतम् ॥४७॥

सतामथ सतीनाञ्च चरितं श्रवणातिथि ।
विधातव्यं सदा श्रेयः सद्धृतं भवभैषजम् ॥४८॥

हननं कर्मणां कार्यं न कार्यं प्राणिनां पुनः ।
प्राणाः प्रियतमा जीव–मात्रस्य नियतं यतः ॥४९॥

क्षमाक्रोधदवाग्नीनां, सुधा शमनकारिणी ।
क्षमैवैका जगज्जालच्छेदिनी दुःखभेदिनी ॥५०॥

ज्ञप्तिः परमसौभाग्यं, ज्ञप्तिरेव परो निधिः ।
ज्ञप्तिः सन्तमसध्वंसे, महसामालयं परम् ॥५१॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

चतुर्विंशति-जिनस्तुतिः

[गुजराती समश्लोकी

अनुवाद]

(अनुवादक—भानुभाई व्यास 'बादरायण')

१. अ- अर्हत् जे सर्वमन्त्रोमां, मन्त्र उत्तम ते नमूं ।
सुवर्णसम धातुमां, मेरु शो पर्वतो मांही ॥

२. आ- आनन्दे तेज धारामां, सज्जनो नहि दुर्जनो ।
सूर्योदय थतां राचे, कमलो नहि घूवडो ॥

३. इ- इंगिते समजे प्राज्ञो भावने न जडे कदि ।
लगाम हालतां मात्र चाले अश्वो न गर्दभो ॥

४. ई- ईश्वर पूज्ये लाधे नित्य सौंदर्य शाश्वत ।
चिन्तामणि भजै तेने केम दारिद्रय सांपडे ? ॥

५. उ- उद्यमी सर्व कार्योने एकले पण साधतो ।
हणे अंधकार एकाकी नभ पार जतो रवि ॥

६. ऊ- ऊर्ध्व निष्पाप जाताने लघुता जे तजे नहि ।
तुंबडुं पकडील्युं जे तरे पाणी परे सही ॥

७. ऋ- ऋजुताने ऋजुता घटे वांको वंकाय सर्वदा ।
सोटी नेतरनी वांसलांस छे उदाहरण सही ॥

८. ॠ- ॠकार जेम दीर्घत्व, कदिये जे तजे नहिं ।
आदि-स्थान न पामे ते शब्दमां पदमां कदि ॥

९. ऌ- ऌकार मित्रता राखे ऋ साथे लघुता वडे ।
मैत्री जगज्जनो पामे ऋजुता हृदये धरे ॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

१०. लॄ- लॄ–समी दीर्घता धारे तेने को नव इच्छतुं ।
सन्मान इच्छनाराने दीर्घता वर्ज्य छे सदा ॥

११. ए- एक मात्र महा हो जो गुण विश्वे प्रकाशतो ।
कस्तूरी गंध मात्र थी विख्यात हरणे बन्यो ॥

१२. ऐ- ऐन्द्र–वृन्द नमे तेने जे सदा इन्द्र ने भजे ।
जेवुं वबाय छे बीज तेवुं फल पमाय छे ॥

१३. ओ- ओषधि बनतुं मूक मात्र योजक जो मळे ।
एकडानी पछी आव्ये मींडानी गणना थती ॥

१४. औ- औन्नत्ये पामतो काले क्षुद्रे सरस होय तो ।
जुवानी आवता जेम कामिनी स्तन वाधता ॥

१५. अं- अं–अनुस्वारना साथी विद्वानो वदता खरे ।
बिन्दुरूपे रहे तेओ स्वरो पाछळ जे पडे ॥

१६. अः- अः विसर्गं वळी कण्ठच स्वर छोडचो छतां स्वरे ।
श्रद्धाथी स्वरने वर्चो श्रद्धा कार्य खरे करे ॥

१७. क- कर्म केराज सामर्थ्ये दुःखी एक सुखी बीजो ।
भाग्ये शंकर ने भस्म–ने लक्ष्मी विष्णुने मळे ॥

१८. ख- खल साथे कदी दोस्ती धीमाने करवी नही ।
मध्यमां आवता छाया पेठे अदृश्य एकता ॥

१९. ग- गर्दभो जेम जे मूढो बलने वश वर्तता ।
प्रहार दंडनो उग्र पामता ते पदे पदे ॥

२०. घ- घर्षणे वधतुं तेज अतिघर्षणथी नहि ।
घर्षणे वासणो शोभे अतिथी नाशपामतुं ॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

२१. ङ- ङ–वगेर मुखे नासा–बडे उच्चार पामता ।
पांचे क्यारेक देखाए, एवी बेघरनी दशा ॥

२२. च- चक्र एकथी भानुनो, रथ पामे दिगंतने ।
विशिष्ट व्यक्तिओ माटे, नियमो होय न्होय वा ॥

२३. छ- छत्री तापथी रक्षे छे, भारथी श्रम हाथने ।
वस्तु निमित्त छे कोना, सर्वथा सुख–दुःखनुं ॥

२४. ज- जगत् आश्चर्यकारी छे, वस्तुनी तो नवाई ।
सोमां पचास आवे ए वात लागे नवी नहीं ॥

२५. झ- झंकार भमरो गुंजे, पीने मधु परागनुं ।
प्राणीओ तुच्छ सामान्ये, स्वार्थमां मिष्ट बोलता ॥

२६. ञ- ञनो उच्चार छे क्लिष्ट, शब्दारंभे वधू वळी ।
अंतमां होय ते वक्र, सदाये विश्वमां दीसे ॥

२७. ट- टंकार शिवनो वाची, वर्ण विख्यात छे जगे ।
तेम बीजा बधा वर्णो, देवता वर्णरूप छे ॥

२८. ठ- ठं ठं ध्वनि घटे थाए, दादरे दडतो रहे ।
रीति पगथियानी ए, मूंगा ए रही ना शके ॥

२९. ड- डगलां गगने मांडे, पक्षी बे पांखथी यथा ।
ज्ञानने आत्मनी पांखे, जीव तेम थतो शिव ॥

३०. ढ- ढ अक्षर सदा मूर्ख–माणसो मुखथी वदे ।
मूर्खा शुं शुं बगाडे ना, ढ ये मूर्ख गणाय छे ।

३१. ण- णकार प्राकृती भाषा, न स्थाने बहु गोठवे ।
प्राकृत पुरुषो प्राये, स्थान फेर कर्या करे ॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

३२. त- तप नाश करे निश्चे, पापो भारे भले रह्या ।
भेदाये वज्रथी सर्वे, अग्नि कोने न बाळतो ? ।

३३. थ- थू थू धू धू अने फू फू करवुं ए भलुं नहीं ।
एथी ना करवुं सारूं, सज्जनो समजे सही ।।

३४. द- दाता तो स्वर्गमां जाए, पेसे पाताल संग्रही ।
होये जो ए विषे शंका, जोइलो मेघ वारिधि ।।

३५. ध- धर्म रक्षा करे तेनी, सेवे जे धर्मने सदा ।
सर्वत्र रीत आ रूडी, भक्त ने प्रभु पाळता ।।

३६. न- नम्र पणे सदा रे वुं, नम्रता विलसे घणुं ।
ना नमे नाशपामे ते, ताड नेतरनी पडे ।।

३७. प- परात्म तत्त्व ने पाये, प्रभावे परमात्मना ।
पारस मणिना स्पर्शे, लोढुं सोनुं बने खरे ।।

३८. फ- फेण ऊंची करे सर्प, विषहीणो फरी फरी ।
विण सामर्थ्य ना जीवो, राचे आडम्बरे मुधा ।।

३९. ब- बोल आ हितकारी छे, सांभळी हृदये धरो ।
किंपाक फूलशा अंते, विहवां रसने त्यजो ।।

४०. भ- भवनी होय जो भीति, भाव चेतन भाववो ।
अर्हन् अभयना दाता, शुद्ध भाववडे थयां ।।

४१. म- महा मोहतणो दारू, पीनारां भानने त्यजे ।
सत्य असत्यने माने, माने असत्य सत्यने ।।

४२. य- यशस्वी दर्शनो जेनां, नथी शुं तस दर्शने ।
नेत्रहीणा नरो आगे, रूप दर्शन शुं फळे ।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

४३. र- रति बाळे बहु तेने, जे रतिने त्यजे नहीं ।
वैराग्ये रति जे राखे, रति तेने त्यजे नहीं ।।

४४. ल- लक्ष्मीने इच्छता सर्वे, जाणे कोइक श्री भली ।
जाणीने चाहे लक्ष्मी जे, चाहे तेने सदाय श्री ।।

४५. व- वह्निमां पेसवुं सारूं, झेर खावुं भलुं वळी ।
खीणमां पडवुं सारूं, दुष्ट जीवन तो नहीं ।।

४६. श- शङ्का कल्याणना कार्ये, कदीये करवी नहीं ।
शङ्कावह्नि वडे दाझ्यो, वणिक् मारे मर्यो नहीं ।।

४७. ष- षड्रिपु हणवा माटे, छ कार्यो नित्य साधवां ।
देवपूजा गुरूसेवा, स्वाध्याय दान ने तप ।।

४८. स- सज्जनो ने सतीओनां, चरित्रो सुणवा सदा ।
जेथी कल्याण साधे ने, संसृति लय पामता ।।

४९. ह- हणवा कर्मने नित्ये, प्राणीने हणवा नहीं ।
जीवमात्र सदा लेखे, प्राणने प्रिय विश्वमां ।।

५०. क्ष- क्षमा क्रोधदवाग्निने, शमावे छे सुधा समी ।
जगजंजालने छेदे, दुःखथी मुक्ति अर्पती ।।

५१. ज्ञ- ज्ञप्ति परम सौभाग्य, ज्ञप्ति भण्डार छे महा ।
अज्ञान तिमिर फेडे, तेजनी ज्योत एवडी ।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

(४)

श्रीगौतम-स्वामि-चरित्रम्

गूर्जर-भाषात्मक-पद्यानुवाद-
गद्यानुवादाभ्यां संयुतम्

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

॥ सकल-लब्धिसम्पन्नाय श्रीगौतमस्वामिने नमः ॥

श्रीगौतमस्वामि-चरित्रम्

(भुजङ्ग-प्रयात-वृत्त-निर्वृत्तम्)

(१)

यदीयं पवित्रं चरित्रं सुचित्रं, लवित्रं महाविघ्नवल्ली-विताने ।
समस्त-प्रशस्त-प्रभाव-प्रभूतं, नमो गौतमस्वामिने मङ्गलाय ॥

(२)

जनिर्यस्य जाता वसोर्विप्रगेहे, पृथिव्या जनन्या अनन्यात्मदेहे ।
प्रसन्नं कृतं नाम यस्येन्द्रभूतिर्नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

(३)

पठित्वाऽखिलं वेद-वेदांगशास्त्रं, प्रचण्डं क्रियाकाण्डमभ्यस्य सर्वम् ।
महाकर्मकाण्डीति यः ख्यातिमाप्तो, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

(४)

विना मां न कश्चित् परो विश्ववेत्ता, न वादी न वक्ता न शास्ता प्रमाता ।
अभूद् यस्य मानं तथाऽतथ्यमुच्चैर्नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

(५)

त्रिलोक्यां समस्यां समस्तार्थवेदी, प्रमत्तप्रवादीय - सम्मान - भेदी ।
अनन्योऽहमेवेति मत्तोऽभवद् यो, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

(६)

समेता नभः – शून्य-बाण-प्रमाणा, विशिष्टार्थमाज्ञातुमाचार्यकल्पाः ।
यदीयान्तिकं शिष्यभावं गृहीत्वा, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

(७)

प्रगायं प्रगायं प्रभूतं यदीयं, यशो नीयते विश्वविश्वे विनेयैः ।
यशस्वी वचस्वीति मत्तोऽनवद्यो, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

(८)

श्रुतिस्यैर्निरुद्धं गंभीरैर्वचोभिर्मनः शङ्कितं यस्य जीवस्य सत्त्वे ।
सशङ्कोऽपि निःशङ्कवद् वर्तते यो, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

(९)

अपापाभिधायां नगर्यां समेताः, समे यज्ञमाकर्तुमाज्ञां दधानाः।
यदीयां विदेशात् स्वदेशाच्च लोका, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय॥

(१०)

यदा वेदसूक्तैर्विधिं यज्ञसत्कं, प्रसन्नेन चित्तेन कुर्वन् स्थितो यः।
तदा तस्य शब्देन सर्वे ररन्जुर्नर्नमो गौतमस्वामिने मंगलाय॥

(११)

इतः श्रीमहावीरनामा जिनेशः, समालोकितालोकलोको यदीयात्।
सुभाग्यादपापां पुरीमाश्रितो वै, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय॥

(१२)

प्रभोरागतिं सज्जनेभ्यो विवेद्याखिलानुत्तमान् सद्गुणानाकलद् यः।
परं तन्न सेहे मदोन्मादमत्तो, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय॥

(१३)

प्रभोः सेवनायै समेताः समेषां, सुराणां समूहाः समुत्साहयुक्ताः।
तदाऽऽयान्ति ते स्वान्तिकं योऽनुमेने, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय॥

(१४)

यदा नागताः स्वीय–पार्श्वे सुशस्ते, तदा खिन्नचेता विकल्पांश्चकार।
महाधूर्त-धूर्तोऽयमित्थं य ऊहे, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय॥

(१५)

अमुष्मिन् जने जीवतीह प्रवादी, ह्ययं कोऽस्ति सर्वज्ञमानी विवादी।
इतीत्थं मनो यस्य संजातमुग्रं, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय॥

(१६)

क्षणं नो सहे गर्वमद्याहमित्थं, विचार्याचलत् सर्वशिष्यैर्वृतो यः।
निजैर्बन्धुभिर्वार्यमाणोऽपि शीघ्रं, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय॥

(१७)

क्रमेणागतो जीवजातानुकूले, प्रभो रम्यसन्देशना - स्थानमूले।
समीक्ष्यैव दूराद् गतो विस्मयं यो, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

(१८)

यशो रक्षणार्थं करिष्येऽधुना किं, यदीहागतो नाभविष्यं तदा किम् ।
मनो यस्य सन्देहदोलाधिरूढं, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

(१९)

यदि स्याज्जयोऽत्रापि मे भाग्यतस्तत्, समग्रेऽथ विश्वेऽद्वितीयो भवेयम् ।
विचार्येत्थमग्रे गतः सालमध्ये, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

(२०)

तदा स्वर्णसोपानपंक्तिस्थितो यो, महावीरवीरेण धीरेण प्रेम्णा ।
समाभाषितो नामगोत्रेण पूर्वं, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

(२१)

इदं नाद्भुतं नाम जानाति मेऽयं, यतो विश्वविख्यातमाख्यं मदीयम् ।
हृदीत्थं महामोहतो (मानतो) यो मुमोद, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

(२२)

परं संशयं मे वदेद् गुप्तगुप्तं, हृदिस्थं तदाऽर्हन्नयं निर्विवादम् ।
स्थितो यः करोति प्रभूतान् विकल्पान्, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

(२३)

तदोक्तं जिनेशेन भो इन्द्रभूते ? कथं जीवसत्वेऽस्ति ते संशयोऽयम् ।
तदाऽनम्रभूतोऽपि नम्रोऽभवद् यो, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

(२४)

गभीरेण घोषेण वेदोक्तसूक्तैर्जिनेशेन संस्फोटितः संशयोऽस्य ।
बभूवाद्यशिष्यः प्रभोर्यस्तदाऽरं, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

(२५)

नभो – बाण-संख्ये वयोवत्सरे श्रीमहावीरतीर्थेश्वराग्रे गृहीत्वा ।
विशुद्धं महासंयमं येन चीर्णं, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

(२६)

यदीयानु सर्वे क्रमेणागतास्तेऽनुजाद्याः श्रुतौ संशयं सन्दधानाः ।
प्रभोर्वाक्यतो दीक्षिता यत्प्रभावान् नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

(२७)

दशैकोत्तरास्ते गणाधीशवरत्वं, प्रभोर्वीरवीरस्य तीर्थे समापुः ।
तदा योऽग्रिमोऽभूद् गणानामधीशो, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

(२८)

त्रिपद्या जिनेन्द्रेण सन्दिष्टयाऽऽशु, कृता द्वादशाङ्गी महानंगभंगी ।
श्रुतज्ञानपूर्णे प्रसिद्धेन येन, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

(२९)

जिनेशान्तिके प्रांजलान्तःप्रवृत्त्या, श्रुतज्ञानपूर्णोऽपि प्रश्नानकार्षीत् ।
परेषां प्रबोधार्थमव्यग्रचित्तो, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

(३०)

विधाने क्रियाणां जिनैर्देशितानां, प्रमादं प्रमुच्याभवत् तत्परो यः ।
तपः षष्ठभक्तं सदैव व्यधत्त, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

(३१)

अनेके प्रबुद्धा यदीयोपदेशाद्, गृहीत्वा महासंयमं पूर्णप्रीत्या ।
प्रपाल्याशु कैवल्यमाप्ता यदग्रे, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

(३२)

स्वपार्श्वे यदासीन्न तद् येन दत्तं, परस्मै परं पंचमं केवलं तत् ।
समुद्भूतमत्यद्भुतं यस्य विश्वे, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

(३३)

स्वशक्त्याऽऽशु गत्वा शुभाष्टापदं यो, जिनान् वन्दते तद्भवे स प्रयाता ।
शिवं संश्रुतं येन वीराज्जिनेशान्-नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

(३४)

सुवर्णं चतुर्द्वार-चैत्यं सुचारु, सदा शोभते यत्र चक्रीशकृत्यम् ।
समेतस्त्वरा यस्तदोपत्यकायां, नमो गौतमस्वामिने मंगलाय ॥

श्रीगौतम-स्वामी-चरित्र

पू. पं. आचार्य श्रीविजयधर्मधुरन्धर सूरिजी महाराजे रचेला स्तोत्रनो

गुजराती - पद्यानुवाद

छे जेनुं अद्भुत ने पवित्र वृत्त जगमांहे घणुं,
वळी विघ्नवल्लि छेदवामां परशुसम जे सोहतुं ।
सघळा प्रशस्त प्रभावथी जे भविकजन मन मोहतुं,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पद-कज नमुं ।। १ ।।

वसुभूति द्विज गेहे थयो शुभजन्म जस सोहामणो,
ने रत्नकुक्षिमात पृथ्वी नयन मन रळियामणो ।
जस नाम जगमां इन्द्रभूति देवमणिसम दीपतुं,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ।। २ ।।

जे चौदे विद्या पारगामी वेदशास्त्र-विचक्षण,
अभ्यास क्रियाकाण्डनो करी कर्मकाण्डी विलक्षण ।
बन्या, नाम जेनुं विस्तर्युं चोमेर शशि ऊजलुं,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ।। ३ ।।

नथी कोई मुज सम शास्त्रवेत्ता, वादी, वक्ता के कवि,
शास्त्रो तणां जे मर्मने वळी गणता निर्मळ मति ।
अभिमान मिथ्या जेहना मनमां सदा आवुं हतुं,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ।। ४ ।।

सर्वज्ञ छुं वळी वादीओने जीतनारो हुं ज छुं,
छे डोब बीजो मुज समो साक्षात् हुं सुरगुरु ।
इम चिन्तवी अभिमानशिखरे चित्त जस नित गाजतुं,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ।। ५ ।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

शास्त्रो तणां परमार्थने जे मळनार हतां घणां,
ते पांच सो छात्रो तथा बीजा घणा पण पंडितो ।
जस पास शिष्यपणुं लईने धन्य निजने लेखता,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ॥ ६ ॥

गुरुवर्य ! आप सरस्वतीना पूर्ण कृपापात्र छो,
वळी वादीगण तम बाळ छो, ने सकल शास्त्र समुद्र छो ।
बिरुदावली जस बोळी छात्रो जगत करता गाजतुं,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ॥ ७ ॥

विपरीत अर्थो वेदपदना करी शंका ऊपजी,
शुं जीव छे के नहि अरे ! के मात्र पचभूत छे ।
शंकित छतां निःशंक थइ निजने गणे सर्वज्ञ जे,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ॥ ८ ॥

आज्ञा स्वीकारी जेहनी स्वदेश ने परदेशथी,
आव्यां घणांये पंडितो ने अन्य जन पण हर्षथी ।
नगरी अपापामां अनोखो यज्ञ जेणे आदर्यो,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ॥ ९ ॥

मेघ-सम गंभीर रवथी वेदसूक्तो उच्चरी,
श्रीइन्द्रभूति यज्ञविधि ज्यारे करावे हर्षथी ।
निरखी सुखी सौ लोक त्यारे हर्षपुलकित थइ जतां,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ॥१०॥

विमल केवलज्ञानथी जे लोक तेम अलोक ने,
करतल-बदर जिम निरखतां श्रीवीरविभु शासनपति ।
नगरी अपापाए पधार्या जेहवा सद्भाग्यथी,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ॥११॥

त्यां सज्जनोथी आगमन श्रीवीरविभुनुं सांभळी,
आश्चर्यकारी तेम लोकोत्तर गुणो भणी करी ।
प्रमोदने बदले थयुं अभिमान मनमां जेहने,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ॥१२॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

सुरलोकथी प्रभु वांदवाने देवगण उल्लासथी,
आवी रह्या ज्यारे हता त्यारे थयुं जस चित्तमां।
साक्षात् देवो यज्ञमां आवी रह्या ए तो जुओ,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ॥१३॥

ज्यारे बधा ते देवता मूकी यज्ञने आगळ गयां,
त्यारे हृदयमां खिन्न थई करतां विकल्पो ते घणां।
साचे ज आ महाधूर्त छे, नहिं तो बने आवुं नहिं,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ॥१४॥

मुज जीवतां छे कोण जे सर्वज्ञ निजने लेखतो,
वळी सर्वगुण सम्पन्नरूपे जेने सहु जग मानता।
एवा विचारे रोषथी थयुं उग्र चित्त जेहनुं,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ॥१५॥

क्षणवार पण हुं ना सहुं अभिमान एनुं एहवुं,
इम चिंतवी निज बंधुओथी वारवा जडतां घणुं।
निज पंचशत छात्रो लईने जेह जितवा नीकल्या,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ॥१६॥

आव्या समोसरणे निहाळ्या वीर विभुने जे समे,
अद्भुत अलौकिक रूप निरखी पाम्या विस्मय ते समे।
आ कोण ब्रह्मा, विष्णु के शिव एम जस मनमां थयुं,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ॥१७॥

मुजने सूझ्युं आ शुं ? अने आव्यो अहिंआ कारणे?
आव्यो अहिं ना होत तो शी हानि मुजने थात रे।
जस चित्तमां चिन्ता घणी निज कीर्तिना रक्षण तणी,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ॥१८॥

सद्भाग्य योगे थाय जो मुज जीत अहिं आ वादमां,
सहु पंडितोमां तो बनुं बेजोड हुं आ विश्वमां।
करता विचारो आम ते आव्या समोसरणे मुदा,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ॥१९॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

सोपान पंक्ति स्वर्णमय चड़ता हता तेओ यदा,
श्रीवीर विभु-उपकारीए आभाषीया प्रेमे तदा।
कह्युं गोत्र गौतम इन्द्रभूति ! शुं सुखे आव्या तमे,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ॥२०॥

ते नाम सुणी मनमां विचारे लेश ना अचरज अहिं,
त्रण जगतमां विख्यात मारुं नाम को जाणे नहिं।
इम चिंतवी निज चित्तमां अभिमानने जे पोषता,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ॥२१॥

मनमां मने जे जीव केरो गुप्त संशय छे खरो,
जे आज दिन पर्यन्त कदिये कोइने पण ना कह्यो।
ते जो कहे तो मानुं आ सर्वज्ञ इम जे चिंतवे,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ॥२२॥

प्रभुए कह्युं-त्यारे तरत हे इन्द्रभूति ! शुं तने,
छे जीवसंशय नव विचारे केम वेद पदार्थने।
ते सांभळी गर्विष्ठ पण अति नम्र जेह बनी गया,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ॥२३॥

'विज्ञानघन' ए वेदपदनो अर्थ गंभीर घोषथी,
प्रभुए कह्यो ने सांभळी थयो दूरसंशय चित्तथी।
प्रतिबोध पामी वीरना जे आद्य शिष्य बनी गया,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ॥२४॥

ते एकला पण नहिं अरे ! शतपंच छात्रो साथ लइ,
संयम प्रभु श्रीवीर-पासे वर्ष पच्चासे ग्रहे।
सर्वत्र जय जयकार वर्त्यो जेमना सत्कार्यथी,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ॥२५॥

निज भ्रातनी दीक्षा सुणी पण चित्तमां संशय धरी,
श्रीअग्निभूति आदि आव्या वीर विभु पासे सही।
दीक्षित थयेला देखी जेने तेह पण दीक्षित थया,
ते मंगलार्थे श्रीगुरुगौतमतणां पदकज नमुं ॥२६॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

परिवार चुम्मालीश शत सह मुख्य बुध अग्यार जे,
दीक्षित थया स्थाप्या प्रभुए तेहने गणधर पदे ।
कल्याणकर शासन तणी थई स्थापना इम जेहथी,
ते मंगलार्थे श्रीगुरु गौतम तणां पदकज नमुं ॥२७॥

प्रभुवदनथी त्रिपदी लइने वीज बुद्धिना धणी,
अन्तर मुहूर्त काळमां जे द्वादशांगी रचे गणी ।
श्रुतरूप गंगोत्पत्ति काजे शोभता हिमगिरि समा,
ते मंगलार्थे श्रीगुरु गौतमतणां पदकज नमुं ॥२७॥

विनयथी अतिनम्र तेओ भविकजन हितकारणे,
बधुं भणतां होवा छतां प्रश्नो प्रभुने पूछतां ।
'गोयम' कही प्रभु वीर तेना जेने उत्तर आपतां,
ते मंगलार्थे श्रीगुरु गौतमतणां पदकज नमुं ॥२९॥

प्रभुए प्रबोधली क्रियाओ अप्रमत्त थई कहे,
वळी आ जीवन छठ्ठ पारणे ठठ्ठ करी कर्मो निर्जरे ।
'गौतम करो न प्रमाद' इम जेने प्रभुए उपदिश्युं,
ते मंगलार्थे श्रीगुरु गौतमतणां पदकज नमुं ॥३०॥

उपदेश मधुरो सांभळी जस बोध-पामी जन घणा,
संसार छोड़ी लेइ संयम ज्ञान केवळने वर्या ।
जस पाणि-पद्म साचे केवळ दाननी लब्धि वसी,
ते मंगलार्थे श्रीगुरु गौतमतणां पदकज नमुं ॥३१॥

दाता जगतमां कोई निजपास वस्तुने दिये,
ना होय जे निजपास तेनुं दान किमहिज संभवे?
जेने न 'केवळ' पास पण दइ दान महा अचरज वर्यु,
ते मंगलार्थे श्रीगुरु गौतमतणां पदकज नमुं ॥३२॥

चउवीश जिन जे शैल अष्टापद चडी निज शक्ति,
वन्दन करे ते तेना भवमां नक्की मोक्षे संचरे ।
प्रभुए कहेलां वचन आ सुरपासथी जेणे सुण्यां,
ते मंगलार्थे श्रीगुरु गौतमतणां पदकज नमुं ॥३३॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

भरते भराव्या देह वर्ण प्रमाण बिंबथी राजता,
आव्या गिरि अष्टापदे रची स्तोत्र जगचिंतामणि ।
जे रत्नमय चउवीश जिनने स्वर्ण चैत्ये संस्तवे,
ते मंगलार्थे श्रीगुरु गौतमतणां पदकज नमुं ॥३४॥

'श्रीविजय धर्म धुरन्धराचार्ये' रचेला स्तोत्रने,
जोतां ज दिल हरखी उठयुं ने तरत ते मनमां वस्युं ।
गौतमतणां गुणगान करता सतत उत्सुक हृदय ने,
एथी थयो अतिहर्ष, जे पद्यानुवाद करी शक्यो ॥३५॥

श्रीनेमिसूरि राजपाटे सूरि अमृत बुधवरा,
गुरु देवसूरि शिष्य सूरि हेमचन्द्रे आ मुदा ।
निधि वेद अंबर नेत्र (२०४९) वर्षे भावनगरे भक्ति,
पद्यानुवाद रच्यों मनोहर वीर विभु सांनिध्यथी ॥३६॥

(विक्रम संवत् २०४९ आश्विनी पूर्णिमा, भावनगर)

आचार्य-प्रवर श्रीमद् देवसूरि-महाराजनां शिष्य श्रीहेमचन्द्र सूरि कृत —
गुजराती पद्यानुवाद पूर्णहुआ ।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

सकल लब्धि-सम्पन्न गौतम स्वामी ने नमस्कार

श्रीगौतमस्वामी चरित्र (छन्द भुजंग प्रयात)

(गुजराती अर्थ)

जेमनुं चरित्र परम पवित्र छे, आनन्द आश्चर्यजनक छे, महान विघ्नोनो जालने कापी नाखरनार छे अने प्रशंसापात्र अनेक प्रभावोथी सभर छे तेवा मंगलकारी गौतमस्वामीने अमारा नमस्कार हो ॥१॥

जेमनो जन्म धनवान ब्राह्मण परिवारमां थयेलो, जेमनां माता पृथ्वी समान अनन्य उदारचरिता हता, जेमनुं 'इन्द्रभूति' एवं प्रसन्नकारी नाम हतुं तेवा गौतमस्वामीने नमस्कार ॥२॥

तेमणे वेद-वेदांगादि शास्त्रोनो अभ्यास करेलो, विशाल एवा क्रियाकांड कलापनो पण अभ्यास करेलो अने 'महाकर्मकांडी' तरीकेनी जेमनी कीर्ति हती तेवा गौतम स्वामीने नमस्कार ॥३॥

'मारा सिवाय कोई सर्वज्ञ नथी. वादी, वक्ता के नेता (पण) नथी, एवुं तेमने मिथ्या अने दृढ अभिमान हतुं' एवा गौतम स्वामीने नमस्कार ॥४॥

त्रैलोक्यमां कोई पण शास्त्रनां समस्त अर्थने जाणनार, प्रचंड वाद-विवाद करी शकनार हूंज छूं, मारो कोई जोटो नथी एवु जेमने (मिथ्या) अभिमान हतुं तेवा गौतमस्वामीने नमस्कार ॥५॥

मोटा-मोटा आचार्यो पण जेमनी पासे विशिष्ट शब्द एवं अर्थ-रचना समजवा आवता, तेमनां शिष्य बनता, तेवा मंगलकारी गौतम-स्वामीने नमस्कार ॥६॥

समग्र विश्वमां मारा यशनां गान गवाय छे, तेथी मारा जेवो यशस्वी अने वाक्पटु बीजो कोई नथी, एवा विचारे जे मत्त हता तेवा मंगलकारी गौतम स्वामीने नमस्कार ॥७॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

जीवात्माना अस्तित्व बाबत वेदमां कहेल वातोथी जेनु' मन शंकाशील थयु' हतु' छतां पोते निःशंक थईने फरता तेवा मंगलकारी गौतम स्वामीने नमस्कार ।।८।।

'अपापा' नामनी नगरीमां जेमनां आदेशथी देश-विदेशमांथी विद्वानो एवां जनसमाज आवेल तेवा मगलकारी गौतम स्वामीने नमस्कार ।।९।।

प्रसन्न चित्तथी वेदमंत्रोथी ज्यारे तेओ यज्ञनो विधि करावता हता त्यारे तेमना वेद-घोषथी बधा लोको प्रसन्न थयेळा....तेवा मंगलकारी गौतम स्वामीने नमस्कार ।।१०।।

"बीजी तरफ जिनेश्वर श्रीमहावीर जगतमां विचरता" सद्भाग्ये ते 'अपाया' नगरोमां आवी पहोंच्या... तेवा मंगलकारी गौतम स्वामीने नमस्कार ।।११।।

सत्पुरुषों पासेथी सकलगुण सम्पन्न जिनेश्वरनां आगमननी खबर मळी परन्तु विद्याभिमानथी मत्त एवा गौतम स्वामीए तेनी दरकार करी नहीं ।।१२।।

जिनेश्वर प्रभुनी सेवा माटे उत्साहपूर्वक देवगण भेळो थयेलो, त्यारे गौतम स्वामीने एम लाग्यु' के ते देवगण मारी (पोतानी) पासे आवे छे ।।१३।।

परन्तु देवसमूह तेमनी पासे न गयो त्यारे तेमनु' मन भांगी पड्यु' अने तेओ जिनेश्वर धूर्त छे एम विचारवा लाग्या ।।१४।।

हु' महान वादी (वाद-विवाद करनार) जीवतो हु' त्यारे आ पोताने सर्वज्ञ माननार-कहेव-डनार बीजो वादी छे कोण ? एवो तेमने गर्व थयो ।।१५।।

हु' एकवार पण आ (जिनेश्वर) ना गर्वने सही लेवानो नथी-एवु' विचारी गौतम स्वामी पोताना बधा शिष्यो साथे (जिन प्रभुनी सामे) वाद-विवाद करवा उपड्या त्यारे तेमना स्नेही हितेच्छु बंधुजनोए रोक्यां तो पण ते उतावल करीने ऊपडया ।।१६।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

जिनेश्वर प्रभुनी पासे पहोंचता तेमने अनेक अननुकूलताओ सांपडी प्रथम तो तेमने जोतांज गौतमस्वामीने परम आश्चर्य थयुं ....।।१७।।

हुं मारी कीर्ति बचाव ना हवे शुं करु ? जो हुं अहीं आव्यो ज न होत तो ? एवा विचारे जेमनुं मन डोलायमान थतुं हतुं ....तेवा मंगलकारी गौतमस्वामीने नमस्कार ।।१८।।

मारा सद्भाग्ये अहीं पण जो मने विजय मळे तो समग्र विश्वमां हुं अद्वितीय-बेजोड़ बनीश, एवा विचारे तेओ आगळ धप्या ।।१९।।

त्यारे सुवर्ण सोपानो पर ऊभेला धीर, वीर, महावीर प्रभुए गौतम स्वामीने तेमना नाम एवं गोत्रथी प्रेमपूर्वक संबोध्या-बोलाव्या ।।२०।।

मारा विश्वविख्यात एवा नामने आ जाणे छे तेमां कांई नवाई आश्चर्य नथी, परन्तु मारा मनमां जे अत्यना गुप्त विचार छे तेने तेओ जाणी जाय (अने कहे) तो हुं तेमने खरा 'अर्हन्' कहुं ...आवा अनेक तर्क वितर्को गौतमस्वामीने करता हता ।।२१।।

त्यारे जिनेश्वर प्रभुए पूछ्युं 'हे इन्द्रभूति' जीवना अस्तित्व विषे तने शंका शा माटे छे ? आ (प्रश्न) ओळखवानी साथे अभिमानो गौतम स्वामी नम्र बनी गया ।।२२।।

वेदोना गहन सूक्तोना घोषथी जिनेशे तेमनी ए शंकाने दूर करी त्यारे तेओ प्रभु जिनेशना शिष्य बनी गया तेवा मंगळकारी गौतमस्वामीने नमस्कार ।।२३।।

पचास वर्षनी ऊंमरे जेनां वड़े श्रीमहावीर स्वामी तीर्थंकरनी पासे विशुद्ध एवुं दीर्घ महाचारित्रने ग्रहण कराव्युं छे तेवा श्रीगौतमस्वामीने मंगल्य वडे नमस्कार करवुं ।।२४।।

पछीतो गौतमस्वीमीना अनुयायी एवा विद्वानो पण वेदवाक्योमां ज्यां ज्यां शंका थती हती ने शंका रजू करवा आव्या, जिनेश्वरे तेमनी सौनी शंकानुं निवारण कर्युं अने तेमने दीक्षा आपी ।।२५।।

तेमांथी ११० महावीरस्वामीनां तीर्थमां आवीने गणाधीश्वर बन्या अने गौतमस्वामी ते बधामां प्रधान गणाधीश्वर थया ।।२६।।

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S. Jun Gun Aaradhak Trust

जिनेश्वर महावीरे त्रिपदीने स्थाने (द्वादश) अंगोथी सम्पन्न 'द्वादशांगी'नी रचना करी पोतानु वेद–विद्यानु ज्ञान बतावी आप्यु ॥२७॥

पोते वेदज्ञानविद् होवा छतां अन्य अज्ञानी जीवोना हित माटे गौतमस्वामीए जिनप्रभुने स्थिरचित्ते अनेक प्रश्नो कर्या ॥२८॥

जिनेश्वरोए देवदेवी क्रियाने करवामां प्रमादने मुकीने जे करवामां हमेंश तत्पर छे अने वळी जेओ छठ्ठ तपने करे छे तेवा श्रीगौतमस्वामीने मंगल्यवड़े नमस्कार करवु ॥२९॥

महावीर स्वामीना उपदेशथी पूर्णप्रभे महासंयमनी दीक्षा लई यम-नियमनु पालन करीने अनेक लोकोए कैवल्यपदनी प्राप्ति करी हती ॥३०॥

पोतानी पासे जे न हतु छता जेना वड़े बीजाओने श्रेष्ठ पंचम केवलज्ञान बीजाने अपाव्युं हतुं अने जेणे आ विश्वने विशे अद्‌भुत लख्यु छे तेवा श्रीगौतमस्वामीने नमस्कार करवा ॥३१॥

स्वशक्तिथी पवित्र एवा अष्टापद पर्वत उपर जइने जेओ जिनेश्व-रोने वंदन करे छे तेओ ते ज भवमां मोक्षमां जाय छे एवु जेणे वीर-भगवान पासेथी सांभळ्यु छे तेवा गौतमस्वामीने नमस्कार करवा ॥३२॥

P.P. Ac. Gunratnasuri M.S.
Jun Gun Aaradhak Trust